महर्षि मनु

एक महानायक

महर्षि मनु

एक महानायक

मधु धामा

elibrary.thearyasamaj.org

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली-110005

elibrary.aryasamaj.org

पुस्तक : महर्षि मनु : एक महानायक
लेखक : मधु धामा (फरहाना ताज)
सर्वाधिकार : सुरक्षित
संस्करण : 2021
मूल्य : 251 रुपये
प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन, 2 बी. डी. चैंबर्स, 10/54
देशबंधु गुप्ता रोड, करोल बाग, नयी दिल्ली-110005
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com
दूरभाष : 23553624, 23551344, 09213527666
टैलीफैक्स : 23553624
शब्द संयोजन : एडिट मीडिया, दिल्ली-शाहदरा
मुद्रक : अजय प्रेस

Maharishi Manu ek Mahanayak

by: Madhu Dhama

क्रम

मनु का जीवनवृत्त	11
मनु और उसकी वंशावली	23
मनु और मनुस्मृति के रचनाकार	29
विवादास्पद ऋषि की भूमिका में मनु	34
मनु और मनुस्मृति के अवान्तरविरोध	43
भ्रांति के झरोखों में मनु	47
प्रक्षेपों के साये में मनु	55
मनु की दृष्टि में शूद्र	61
मनु और वेद	75
मनु और मांसाहार	89
मनु की दृष्टि में नारी	99
प्रकृति-प्रदत्त वैयक्तिक भिन्नताएं और शूद्र	116
क्या वर्णव्यवस्था के जनक राजर्षि मनु थे?	122
मनु और वर्ण-व्यवस्था	130
मनु और भारतीय राजनीति	145
मनु का अध्यात्म-चिंतन	156
मनुवादसमाज के लिए वरदान या अभिशाप	160
संदर्भ-ग्रंथ	175

library.thearyasamaj.org

आत्म-निवेदन

महर्षि मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं। इस तत्वद्रष्टा को जानने के लिए हमारे पास कोई विश्वसनीय स्रोत नहीं है। यद्यपि शतपथ ब्राह्मण की जलप्लावन घटना में मनु का संदर्भ है, लेकिन वह इतना अपूर्ण है कि उससे मनु के संबंध में किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता। मनु रचित मनुस्मृति उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित होने में उचित स्रोत सिद्ध हो सकती थी, लेकिन उसमें प्रक्षेपों की इतनी भरमार है कि वह अपना मौलिक स्वरूप ही खो बैठी है। मनुस्मृति जिस रूप में हमें उपलब्ध है, न वह मनु के साथ न्याय कर पा रही है और न वैदिक संस्कृति के साथ। मनुस्मृति नाम से जो धर्म शास्त्र हम तक पहुंचा है उसमे सैकड़ों श्लोक प्रक्षिप्त हैं। इन प्रक्षिप्त श्लोकों ने इस धर्मशास्त्र को अधर्मशास्त्र में परिवर्तित कर डाला है।

मनु रचित मनुस्मृति को परवर्ती स्वार्थी और अल्पज्ञ तथाकथित विद्वानों के द्वारा समय-समय पर मिलाए गए प्रक्षिप्त श्लोकों ने इतना अधिक विकृत, वैदिक संस्कृति के विपरीत और भ्रांतिग्रस्त कर दिया कि कुछ विशेष वर्ग के पाठकों के मन में इसके प्रति अनास्था और घृणा तो उमड़ ही पड़ी इससे भी आगे बढ़कर इसके प्रति विद्रोह पनप उठा और इस धर्मशास्त्र को अग्निसात तक कर डाला। एक वर्ग विशेष आज भी ऐसा है जो मनु को मनुस्मृति के रचयिता के रूप में हेय दृष्टि से देखता है और उन्हें सवर्णों का पक्षधर मानकर उनका तिरस्कार करता है।

उनका यह आचरण एक स्वाभाविक घटना तो बन सकती है, लेकिन

यह घटना उन्हें निर्दोष सिद्ध नहीं कर सकती है। उन्हें उस मनु से घृणा करने का पूर्ण अधिकार है जो प्रक्षेपों के रचयिताओं द्वारा उत्पन्न किया गया है, लेकिन उन्हें उस मौलिक मनु के प्रति तो श्रद्धावान होना ही चाहिए जो वैदिक संस्कृतिक का वाहक है और मानव कल्याण के लिए एक सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् पथ का सृजक है। इसी धर्मशास्त्र से उस मौलिक मनु को खोजा जा सकता है और प्रो. सुरेन्द्र कुमार ने विकृत मनुस्मृति से प्रक्षिप्त श्लोकों को बहिष्कृत करके ऐसा कर दिखाया है।

एक विवादास्पद महानायक महर्षि मनु नामक ग्रंथ लिखकर मैं सुधि पाठकों को महर्षि मनु के मौलिक चिंतन-दर्शन से अवगत कराना चाहता हूं, जिससे वे स्वयं निर्णय ले सकें कि क्या मनु सर्वमान्य श्रद्धा के पात्र बन सकते हैं अथवा नहीं। यदि पाठक प्रक्षेपकों के कोहरे से मुक्त होकर मनु को स्पष्ट रूप से देख सकें तो मैं ग्रंथ लिखने का उद्देश्य प्राप्त कर सकूंगा।

इस ग्रंथ को लिखने में मुझे जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनकी ओर संकेत करना मुझे समीचीन दिखाई देता है। मनुस्मृति के अलावा मनु के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालने वाले साहित्य का नितांत अभाव है। हरदयाल म्यूनिसिपल पुस्तकालय गांधी ग्राउंड दिल्ली 110006 जैसे शीर्ष पुस्तकालयों में भी मनु से संबंधित साहित्य उपलब्ध नहीं है। आर्य समाज मंदिर विकासपुरी दिल्ली का पुस्तकालय जो वैदिक साहित्य से समृद्ध माना जाता है वहां भी ऐसा कोई स्रोत नहीं है जिसके माध्यम से मनु का अध्ययन किया जा सके। अंत में मुझे अपने आध्यात्मिक गुरु तेजपाल सिंह धामा की शरण में जाना पड़ा और उनके मार्गदर्शन में ही यह ग्रंथ पूर्ण किया। निश्चय ही वे शतशः धन्यवाद के पात्र हैं। उनकी अनुकंपा के बिना इस ग्रंथ की रचना संभव नहीं थी।

–मधु धामा

नई दिल्ली

Library.Arya Samaj.org

मनु का जीवनवृत्त

मनु कौन थे

मनु का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व और कृतित्व सभी कुछ विवादास्पद है। मनु के संबंध में कुछ भी कहना सघन कोहरे में पथ की खोज करना है। जिस प्रकार प्राचीन वैदिक साहित्य जैसेउपनिषद्कारों और दर्शनकारों के विषय में बहुत कम ज्ञात है उसी प्रकार 'मनु' के संबंध में कोई विशेष जानकारी नहीं है। वे एक दार्शनिक थे, स्मृतिकार थे, राजा थे या ऋषि थे? उपलब्ध वैदिक या अन्य साहित्य में भी कोई विश्वसनीय जानकारी नहीं है। कहीं-कहीं तो मनु को केवल धर्मशास्त्र का रचयिता बताया गया है और कहीं-कहीं समस्त सृष्टि की उत्पत्ति मनु से बताई गई है। सब कुछ इतना अस्पष्ट है कि मनु के नाम में भी भ्रमात्मक स्थिति बनी हुई है। मनु कहीं-कहीं स्वायंभुव मनु और कहीं-कहीं वैवस्वत मनु के नाम से संदर्भित है। ये स्वायंभुव मनु और वैवस्वत मनु एक ही मनु के नाम है या अलग-अलग यह भी भ्रम के आवरण में अवंगुठित है। शतपथ ब्राह्मण (13-4-3-3) में आता है।

मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह तस्य मनुष्या विशः

अर्थात् मनु वैवस्वत राजा है और मनुष्य उसकी प्रजा है। इससे प्रतीत होता है कि मनु वैवस्वत कोई राजा था। मेधातिथि ने अपने भाष्य के आरंभ में मनु के विषय में लिखा है कि 'मनु कोई पुरुष विशेष था जो वेदों की अनेक शाखाओं को पढ़कर धर्मानुष्ठान तथा स्मृति परंपरा के लिए विख्यात हो गया था।' यद्यपि जन सामान्य मनु को मनुस्मृति का रचयिता मानता

है, लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार मनुस्मृति के रचयिता मनु नहीं थे, बल्कि ऋषि भृगु थे, इसलिए मनुस्मृति को भृगुसंहिता भी कहते हैं। मनुस्मृति के रचयिता के संबंध कैसी भी किवंदन्ति रही हो, परंतु यह सत्य है कि मनु अवश्य ही कोई महापुरुष था जिसके उपदेश आर्य सभ्यता के निर्माण तथा जीवन स्थिति के लिए बड़े साधक सिद्ध हुए, इसलिए मनु श्रद्धा के पात्र रहे हैं और भविष्य में रहेंगे।

मनु की उत्पत्ति

मनु कैसे उत्पन्न हुए इस संबंध में दो मत चलते आ रहे हैं। प्रथम मत जो दूसरे मत की तुलना में प्रमाणिक लगता है, मनुस्मृति के समकालीन भाष्यकार डॉ. सुरेन्द्र कुमार द्वारा भी समर्पित है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति' में इस मत का प्रमाणों सहित वर्णन किया है जो इस प्रकार है

विश्व के ज्ञात इतिहास में अपनी अनन्य विशेषताओं के कारण जो प्रथम प्रजापति (समाज का प्रमुख) प्रसिद्ध हुआ उसका नाम ब्रह्मा था। विश्व का इतिहास और प्रमुखतः भारत का इतिहास तथा वंश इसी ब्रह्मा से आरंभ होते हैं, इसी कारण इसको आदिपुरुष 'आत्मभू' अथवा स्वयंभू कहा गया है। यह आदिम ब्रह्मा तथा इसके 'ब्रह्मा' गोत्रधारी अन्य अनेक वंशज प्रजापति के दायित्व को निभाते रहे। ऐसे सात ब्रह्माओं का उल्लेख संस्कृत के ग्रंथों में मिलता है। इनमें सातवें ब्रह्मा का नाम 'पद्मज' ब्रह्मा था। काल के सापेक्ष यहां तक आते-आते जनसंख्या अधिक बढ़ चुकी थी जिसके परिणामस्वरूप आवश्यक वस्तुओं का अभाव होने लगा था। ऐसी स्थिति में समाज में अव्यवस्था बढ़ने लगी थी और समाज को इन अव्यवस्थाओं के नियंत्रणकर्ता की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी।

एक दिन इस अराजकता से प्रभावित होकर जनता प्रजापति पद्मज ब्रह्मा के पास गई और किसी को इस अराजकता का नियंत्रक (राजा) बनाने की प्रार्थना की। महाभारत में इस घटना का वर्णन इस प्रकार है

संहितास्तास्तदा जग्मुः असुखार्ताः पितामहम्।
अनीश्वरा विनश्यामो भगवन्नी भगवनन्नीश्वरं दिशा॥

यं पूजयेम सम्भूय यश्च न : प्रतिपालयेत्।
ततो मनुं व्यादिदेश मनुर्नाभिननन्द ताः॥
बिभेमी कर्मणः पापात् राज्यं हि भृशदुस्तरम।
विशेषतो मनुवयेषु मिथ्यावृक्षेषु नित्यदा॥
तमब्रुवन प्रजा मा भैः कर्तृनेनो गभिष्यति।
ततो महीं परिययौ पर्जन्य इव वृष्टिमान्।
शमयन् सर्वतः पापान् स्वकर्मसु च योजयन॥

(महाभारत, शान्तिपर्व अ. 67,20-23,32)

अर्थात्दुःख और अराजकता से पीड़ित प्रजाएं एक साथ मिलकर पितामह ब्रह्मा के पास गई और बोलीहे भगवान! बिना राजा के हम प्रजाएं विनष्ट हो जाएंगी, इसलिए किसी उपयुक्त व्यक्ति को राजा नियुक्त कीजिए, जिसका हम सर्वोच्च सम्मान करें और वह हमारा पालन-पोषण तथा रक्षा किया करे। ब्रह्मा ने अपने पुत्र स्वायंभुव मनु जो युवा विद्वान तथा लोकप्रिय हो चुका था और जिसका नाम इसलिए स्वायंभुव रखा गया था कि वह स्वायंभुव वंश में उत्पन्न हुआ था को राजा बन जाने का आदेश दिया। परंतु मनु को पिता का प्रस्ताव रुचिकर न लगा। उसने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा, "राज्य करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि असामाजिक तत्वों के नियंत्रण में मुझसे कोई पाप या अन्याय हो सकता है।" तब सब ने कहा, "आप इस संभावना से भयभीत न हों और राजा बनने का प्रस्ताव स्वीकार कर लें। जहां तक प्रश्न पाप या अन्याय का है, आप प्रभावित नहीं होंगे, यह प्रभाव पापियों और अन्यायकर्ताओं पर पड़ेगा, अन्ततः मनु राजा बनने के लिए तैयार हो गए।

इस प्रकार वर्ण परिवर्तन करके मनु ब्राह्मण से क्षत्रिय बन गए और विश्व के आदि राजा कहलाए। महर्षि बाल्मीकि रचित रामायण में भी मनु को आदि राजा बताया गया है

आदिराजो मनुरिव प्रजानां परिरक्षिता।

बालकांड (6-4)

अर्थात्दशरथ आदि राजा स्वायंभुव मनु के समान स्नेह से प्रजाओं की रक्षा करते थे।

विष्णुपुराण में स्वायंभुव मनु को ब्रह्मा का पुत्र कहा है और उसको राजा नियुक्त करने की घटना का उल्लेख किया है। पुराण के अनुसार मनु सबसे पहला राजा था।

ततो ब्रह्मा आत्मसंभूतं पूर्वं स्वायंभुवं प्रभुः।
आत्मानभेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनुं द्विजः॥

(1-7-16)

स्वायंभुवो मनुः पूर्वम्।

(3-1-6)

अर्थात्-तब ब्राह्मण वर्णधारी ब्रह्मा ने अपने सगे पुत्र स्वायंभुव मनु को प्रजापालनार्थ प्रथम राजा के रूप में नियुक्त किया। पुत्र को राजा बनाने पर यह अनुभव हो रहा था जैसे प्रभु ब्रह्मा ने स्वयं को ही राजा बनाया हो अर्थात् मनु गुणों में ब्रह्मा सदृश था। यह स्वायंभुव मनु पहला अर्थात् आदि राजा था।

भागवत महापुराण के वर्णन से यह ऐतिहासिक तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है

प्रजापतिसुतः सम्राट मनुः विख्यातमंगलः।
ब्रह्मवर्त योऽधिवसन् शान्ति सप्तार्णवां महीम्॥
यः पृष्टो मुनिभिः प्राहधर्मान् नानाविधान् शुभान्।
नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा।
एतद् आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम॥

(3-22-25,38,39)

अर्थात्प्रजापति ब्रह्मा का पुत्र सुविख्यात, यशस्वी मनुसम्राट चक्रवर्ती राजा था जो ब्रह्मावर्त प्रदेश को राजधानी बनाकर सात द्वीपों वाली पृथ्वी का शासन करता था। उसी स्वायंभुव मनु ने मुनिजनों द्वारा पूछने पर मनुष्यों के वर्णों और आश्रमों के धर्मों का उपदेश किया था। वह सभी प्राणियों का हितैषी था। यह आदि राजा मनु का अद्भुत चरित्र है।

इस प्रकार महाभारत के पूर्वकालीन निरुक्त में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में मनु को मानव सृष्टि के आदि युग का संविधानदाता कहा है

अविशेषेण पुत्राणामं दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां निसर्गादौ मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्॥

(3-4)

अर्थात्मानव उत्पत्ति के आदि काल में उत्पन्न मनु स्वायंभुव ने यह विधान बनाया था कि दाय भाग के बंटवारे में पुत्र-पुत्री का समान भाग होता है। पुत्र-पुत्री होने के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं होता।

समस्त प्राचीन भारतीय साहित्य में मनु स्वायंभुव को आदि धर्मशास्त्रकार के रूप में स्मरण किया है, और उनके शास्त्र मनुस्मृति को सर्वोपरि प्रामाणिक धर्मशास्त्र स्वीकार किया है। महाभारतकार का कथन है

ऋषयस्तु व्रतपराः समागम्य पुर विभुम्।
धर्मं पप्रच्छुरासीनमादिकाले प्रजापतिम्॥

(महा. शान्ति. 36-3)

अर्थात्मानवसृष्टि के आदिकाल में व्रतपालक तपस्वी ऋषि एकत्र होकर प्रजापालक मनु (स्वायंभुव) के पास आए और उस राजर्षि से धर्मों के विषय में जानकारी प्राप्त की।

इन उपरोक्त सशक्त प्रमाणों से डॉ. सुरेन्द्र कुमार ने सिद्ध किया है कि स्वायंभुव मनु ब्रह्मा के पुत्र थे और उन्होंने ने ही मनुस्मृति की रचना की है।

मनु के जन्म के संबंध में दूसरा मत मनुस्मृति में ही वर्णित है। जिन श्लोकों से इस मत की पुष्टि की गई है। डॉ. सुरेन्द्र कुमार सहित कुछ मनीषियों ने उन श्लोकों को प्रक्षिप्त घोषित किया है। फिर भी लोक जिज्ञासा के लिए उसका वर्णन समीचीन लगता है। मनुस्मृति के प्रथम अध्याय के जगदुत्पत्ति उपविषय में जगदुत्पत्ति के साथ-साथ मनु की उत्पत्ति का भी विवरण दिया गया है जो इस तरह से है

मनु से तात्पर्य यहां वैवस्वत मनु से है। यह हमारे समक्ष विद्यमान

सृष्टि सातवें वैवस्वत मनु का वर्त्तमान है। वैदिक काल गणना के अनुसार इससे पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं1. स्वायंभुव, 2. स्वारोचिष, 3. औत्रमि, 4. तामस, 5. रैवत, 6. चाक्षुष। सातवां वैवस्वत मन्वन्तर अब चल रहा है। इससे आगे सावर्णि आदि सात मन्वंतर और आने शेष हैं। इस प्रकार से ये सब मिलकर चौदह मन्वंतर होते हैं। इनके संबंध की पूर्ण जानकारी के लिए वैदिक काल गणना का अध्ययन जरूरी है।

वैदिक काल-गणना

किसी भी युग की पूर्वसन्धि-काल को संध्या और उत्तर-संधिकाल को संध्यांश कहा जाता है। प्रत्येक युग का परिमाण इन्हीं संध्या और संध्यांश के माप-दंडों से ज्ञात किया जाता है।

सतयुग का परिणाम	=	4000+400 (संध्यावर्ष) + 400 (संध्यांश वर्ष)
	=	4800 दिव्यवर्ष
	∵	एक दिव्यवर्ष का मान 360 मानुषवर्ष के बराबर होता है।
अतः सतयुग का परिणाम	=	4800 × 360
	=	1728000 मानुषवर्ष
त्रेतायुग का परिमाण	=	3000 + 300 संध्यावर्ष + 300 संध्यांश वर्ष
	=	3600 दिव्यवर्ष
	=	3600 × 360
	=	1296000 मानुषवर्ष
द्वापरयुग का परिणाम	=	2000+200 संध्यावर्ष +200 संध्यांशवर्ष
	=	2400 दिव्यवर्ष
	=	2400 × 360
	=	864000 मानुषवर्ष
कलियुग का परिणाम	=	1000+100 संध्यावर्ष +100 संध्यांशवर्ष
	=	1200 दिव्यवर्ष
	=	1200×360
	=	432000 मानुषवर्ष

elibrary.theayurvedajournal.org

एक चतुर्युगी = सतयुग + त्रेतायुग + द्वापरयुग + कलियुग
= 1728000+1296000+864000+432000
= 4320000 मानुषवर्ष

ब्रह्म का एक दिन = 1000 चतुर्युगी
= 1000×4320000
= 4320000000 मानुषवर्ष

ब्रह्म की एक रात = 4320000000 मानुषवर्ष

सृष्टि की अवधि = ब्रह्म का एक दिन
= 4320000000 मानुषवर्ष

प्रलय की अवधि = ब्रह्म की एक रात
= 432 0000000 मानुषवर्ष

सृष्टि और प्रलय का परिणाम बराबर होता है।

ब्रह्म का एक दिन और एक रात का परिणाम बराबर होता है एक सृष्टि का परिणाम चौदह मन्वंतरों में विभाजित होता है अतः एक मन्वंतर का परिणाम

$$= \frac{\text{1000 चतुर्युगी}}{14}$$

= 71.43 चतुर्युगी
= 71 चतुर्युगी (लगभग)
= 4320000 × 71
= 306720000 मानुषवर्ष

सातवें वैवस्वत मनु के भोग में यह अट्ठाईसवीं चतुर्युगी चल रही है। इस चतुर्युगी में कलियुग के 4996 वर्षों का भोग हो चुका है और 427004 वर्षों का भोग अभी शेष है।

जगत उत्पत्ति

उत्पत्ति से पूर्व जगत की स्थिति का वर्णन मनु ने प्रथम अध्याय के पांचवें श्लोक (1-5) में इस प्रकार किया है

यह सब जगत सृष्टि से पूर्व प्रलय में अंधकार से आच्छादित था। उस समय यहां न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न भौतिक चिन्हों

से युक्त ज्ञानेन्द्रियों से जानने योग्य कुछ था। तब (1-6) अपने कार्य को करने में स्वयं समर्थ, किसी दूसरे की अपेक्षा न रखने वाला, स्थल रूप में प्रकट न होने वाला, प्रकटावस्था की ओर उन्मुख करनेवाला, अग्नि, वायु आदि महाभूतों को आदि शब्द महत् अहंकार आदि को भी उत्पन्न करने की महान शक्तिवाला परमात्मा इस समस्त विश्व को प्रकटावस्था में लाते हुए प्रकट हुआ।

(1-7) जो यह आत्मा के द्वारा अनुभव किया जा सकने वाला सूक्ष्मरूप, अव्यक्त, नित्य, सब प्राणियों का आश्रयस्थान और जो चिंतन द्वारा पार न पाया जा सकने वाला है वही पहले स्वयं प्रकट हुआ। (1-8) अपने शरीर से अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा वाले उस परमात्मा ने ध्यान करके पहले अप् तत्व को ही रचा, फिर उन अपूतत्वों में शक्तिरूपी बीज को छोड़ा। (1-9) फिर वह बीज हजारों सूर्यों की ज्योति के समान सुनहरी अण्डे के रूप में परिणत हो गया। फिर उसमें सब लोगों के पितामह के समान ब्रह्मा अपने आप उत्पन्न हुए।

उस अण्डे से ब्रह्मा कैसे उत्पन्न हुए इसका वर्णन करते हुए मनु ने श्लोक (1-12) में कहा है कि उस अंडे में एक वर्ष तक अर्थात् ब्रह्म के वर्षप्रमाण के अनुसार 360 ब्रह्म दिन तक निवास करके उस भगवान ने स्वयं ही अपने ध्यान से उस अण्डे को दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया। (1-13) उस ब्रह्म ने उन दो टुकड़ों से द्युलोक और पृथ्वीलोक तथा बीच में आकाश और आठों दिशाओं की और जलों के नित्यस्थान समुद्रों की रचना की।

इसके उपरांत (1-14) से (1-15) उस परमात्मा ने स्वाश्रयस्थित प्रकृति से ही जो कारणरूप में विद्यमान रहे और विकारी अंश से जो कार्यरूप में अविद्यमान रहे ऐसे स्वभाव वाले 'महत्' नामक तत्त्व को और महत् तत्त्व से 'मैं हूं' ऐसा अभिमान करने वाले सामर्थ्यशाली 'अहंकार' नामक तत्त्व को तथा उससे सब त्रिगुणात्मक पांच तन्मात्राओंशब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध को और आत्मोपकारक अथवा निरन्तर गतिशील 'मन' इन्द्रिय को तथा विषयों को ग्रहण करने वाली दोनों वर्गों की पांचों ज्ञानेन्द्रियोंआंख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा एवम् कर्मेन्द्रियोंहाथ, पैर, वाक्, उपस्थ, पायु को यथाक्रम से उत्पन्न करके प्रकट किया।

ऊपर वर्णन किए गए उन तत्त्वों में से (1-16) अनंत शक्तिवाले छहों तत्वों के सूक्ष्म अवयवों शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच तन्मात्राएं तथा छठे अहंकार के सूक्ष्म अवयवों को उनके आत्मभूत तत्त्वों के विकारी अंशों अर्थात् कारणों में मिलाकर सब पांचों महाभूतोंआकाश वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की सृष्टि की। तब (1-18) जगत के तत्त्वों की सृष्टि होने पर अपने-अपने कर्मों के साथ शक्तिशाली सभी सूक्ष्म महाभूत और अपने सूक्ष्म अवयवोंइन्द्रियों और अहंकार के साथ मन सब प्राणियों को जन्म देने वाले अविनाशी आत्मा को आवेष्टि करते हैं और इस प्रकार सूक्ष्म शरीर की रचना होती है।

इस प्रकार विनाश रहित परमात्मा से श्लोक (1-14) व (1-15) में वर्णित महाशक्तिशाली सात तत्त्वोंमहत्, अहंकार तथा पांच तन्मात्राओं के जगत के पदार्थों का निर्माण करने वाले सूक्ष्म विकारी अंशों से यह दृश्यवान विनाशशील समस्त जगत उत्पन्न होता है (1-19)

श्लोक (1-24) और (1-25) में कहते हैं कि उस परमात्मा ने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से समय और समय विभागोंनिमेश, काष्ठा, कला, दिन-रात आदि को, नक्षत्रों-अश्विनी, भरणी आदि को तथा ग्रहों-सूर्य चन्द्र आदि को, नदियों, समुद्रों, पर्वतों और ऊंचे-नीचे स्थानों को तथा तप, वाणी, प्रसन्नता और काम-क्रोध को, इन सब प्रजाओं को तथा शेष सम्पूर्ण सृष्टि को रचा।

स्त्री-पुरुष की रचना के संबंध में मनु ने श्लोक (1-32) में वर्णन करते हुए कहा है कि वह ब्रह्मा अपने शरीर के दो भाग करके आधे से पुरुष और आधे से स्त्री हो गया। फिर उस स्त्री में उस ब्रह्मा ने 'विराट' नामक पुरुष को उत्पन्न किया।

तपस्तप्त्वाऽसृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट्।
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमा॥

(मनु. 1-33)

अर्थात्हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! उस विराट नामक पुरुष ने तपस्या करके, जिसको उत्पन्न किया, उसे इस सब संसार के रचयिता मुझ मनु को समझो, अर्थात् वह मैं मनु ही हूं।

इन दो मतों के अतिरिक्त भी मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराण और इतिहास में बिखरा हुआ मिलता है, लेकिन वह इतना नहीं है कि इसके आधार पर मनु के संबंध में पर्याप्त और प्रामाणिक जाकनारी जुटाई जा सके। डी.ए.वी. कॉलिज लाहौर के पूर्व अनुसंधानाध्यक्ष स्व. पंडित भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर ने अपनी प्रख्यात रचना 'भारतीय संस्कृति का इतिहास' में मनु का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है

आदि राजा मनु ने अपनी राजधानी अयोध्या स्थिर की थी। पहले अयोध्या नगरी नहीं थी। इसका निर्माण मनु ने यत्नपूर्वक स्वयं किया। सरयू के तीर पर कौसल देश में यह सुन्दर नगरी बनाई गई। यह नगरी 12 योजन (15 मील) लम्बी और तीन योजन विस्तीर्ण चौड़ी थी।

राजा मनु ने अयोध्यापुरी में बड़े-बड़े द्वार और कई स्थानों पर दुर्ग भी बनवाए थे। सेना के रहने का सुप्रबंध था। पथ, राजपथ और महापथ सुविभक्त थे। इन पथों के दोनों और वृक्ष और पुष्प वाटिकाएं लगाई गई थीं।

पं. भगवद्दत के अनुसार मनु से मानवों की संस्कृति का आरंभ होता है। मनु के पुत्रों और कन्या के वंश में संपूर्ण भारत बंट गया। मनु के पुत्र सूर्य वंश के कहलाए और कन्या वंश का नाम सोम अर्थात् चंद्रवंश हुआ। इन दोनों वंशों में महाप्रतापी राजा, राजर्षि और ब्रह्मर्षि हुए। इन्हीं क्षत्रिय कुलों के अनेक लोग तेजस्वी ब्राह्मण बन गए। वर्णाश्रम मर्यादा का सुचारू पालन इन्हीं वंशों के कारण हुआ।

विश्व की प्रमुख संस्कृतियों में जलप्लावन का वर्णन मिलता है। जिसके बाद नई सृष्टि का उद्भव है। भारतीय संस्कृति में भी शतपथ ब्राह्मण में यह वर्णन है और जल-प्लावन के अवतरण के बाद मनु द्वारा सृष्टि की रचना दिखाई है।

शतपथ ब्रह्मण के प्रथम कांड के आठवें अध्याय में जल-प्लावन का वर्णन मिलता है, जिसमें मनु द्वारा जल-प्लावन के बाद जल का अवतरण होने पर सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है, लेकिन वहां भी मनु के उद्भव संबंधी कोई अन्य जानकारी नहीं है। वह वर्णन इस प्रकार है

मनु के लिए प्रातः काल पानी लाया गया, जैसा कि प्रायः हाथ धोने के लिए लाया जाता है। जैसे ही वह हाथ धो रहा था तो उसके हाथ में

एक छोटी सी मछली आ गई। वह भयभीत स्वर में बोली, "आप मेरा किसी भी प्रकार का अहित न करें, बल्कि मेरा पालन-पोषण करें। मैं इस अनुग्रह के बदले में आपकी रक्षा करूंगी।"

मनु ने पूछा, "तू मेरी किससे रक्षा करेगी?"

मछली ने उत्तर दिया, "एक भयंकर तूफान आएगा और इसके बाद जल-प्लावन। उस जल-प्लावन में यह सब प्रजा बह जाएगी। मैं उससे तेरी रक्षा करूंगी।"

"मैं तुझे कैसे पालूं?"

"जब तक हम छोटी रहती हैं हमारे ऊपर काल मंडराता रहता है, क्योंकि छोटी मछलियां बड़ी मछलियों का आहार बनती रहती हैं। आप मुझे पहले घड़े के पानी में पालें। जब मैं उससे बड़ी हो जाऊं तो गड्ढ़ा खोदकर मुझे उसके पानी में रखना। जब मैं उससे भी बड़ी हो जाऊं तो मुझे समुद्र में ले जाकर वहां छोड़ देना।"

वह मछली तुरंत ही झष मछली हो गई, क्योंकि झष मछली अन्य मछलियों से अधिक बढ़ती है।

उस मछली ने मनु से कहा, "अमुक वर्ष में जल-प्लावन होगा, तब तू मेरे कहने के अनुसार नाव बनाना। जल-प्लावन के अवसर पर तू नाव में बैठ जाना। मैं तुझे उससे बचाऊंगी।"

मनु ने मछली की योजनानुसार उसे समुद्र में छोड़ दिया। जिस वर्ष के लिए मछली ने मनु को नाव बनाने के लिए कहा था। उस वर्ष ही उसने नाव तैयार कर ली। जब तूफान उठा और जल-प्लावन से धरती डूबने लगी तो वह नाव में बैठ गया। पानी बढ़ते ही वह मछली तैर कर उस तक आ पहुंची और अपने सींग से उस नाव को बांधकर उसे उत्तर दिशा की ओर ले चली।

मछली ने कहा, "मैंने आपको बचा लिया है। अब वृक्ष में नांव बांध दो। जब जल उतर जाए तो आप नीचे उतर जाना।"

पानी उतरते ही मनु नीचे उतर गया। मनु ने देखा सब प्रजा इस जल-प्लावन से नष्ट हो गई है और वह अकेला ही बच पाया है। ऐसी स्थिति में उसने संतान की इच्छा की। इसके लिए उसने पाक यज्ञ किया

और घी, दही, मट्ठा भी जलों में चढ़ाया। तब एक वर्ष उपरांत एक स्त्री हुई। वह यज्ञ से मोटी होकर निकली। उसके पैर में घी था। मित्र और वरुण उसे मिले। उन दोनों ने उससे पूछा, "तू कौन है?"

उसने कहा, "मनु की लड़की।"

"तू हम दोनों की है?"

"नहीं, मैं उसी की हूं, जिसने मुझे यज्ञ से उत्पन्न किया है।"

"यज्ञ में हम भी भागीदार थे अतः तुझमें भी हमारा भाग है।"

उस स्त्री ने कोई उत्तर नहीं दिया और वह वहां से चलकर मनु के पास पहुंच गई। मनु ने उससे पूछा, "तू कौन है?"

उसने कहा, "मनु की लड़की"

"भगवती! तू मेरी लड़की कैसे?"

"तूने जलों में जो घी मट्ठा अर्पण किया है उसी से मैं उत्पन्न हुई हूं। मैं आशी हूं। तू मेरा प्रयोग कर। यदि तू यज्ञ में मेरा प्रयोग करेगा तो बहुत से पशुओं और संतान वाला होगा। जो कुछ वस्तुएं तू मेरे द्वारा मांगेगा, वे सब तुझे मिल सकेंगी।"

मनु ने उसका यज्ञ के मध्य में प्रयोग किया। उसने प्रजा की कामना की और उसके द्वारा प्रजा को उत्पन्न किया, इसलिए ये सब मनु की संतान कहलाईं। मनु ने जो भी वस्तुएं उसके माध्यम से चाही, वे सब उसको प्राप्त हो गई। यही स्त्री 'इड़ा' के नाम से जानी गई।

जयशंकर प्रसाद ने अपने प्रसिद्ध काव्य 'कामायनी' में वैवस्वत मनु और श्रद्धा से मानवीय सृष्टि का प्रारंभ माना है। उन्होंने इसके साक्ष्य में भागवत का श्लोक प्रस्तुत किया है

'तरो मनुः श्रद्धादेवः संज्ञापामास भारत,
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान् स आत्मवान।

(9-1-11)

जयशंकर प्रसाद के अनुसार श्रद्धा के साथ मनु का मिलन होने से जल-प्लावन के जल-अवतरण के बाद उसी निर्जन प्रदेश में उजड़ी हुई सृष्टि को फिर से आरंभ करने का प्रयास हुआ।

मनु और उसकी वंशावली

वैदिक तथा लौकिक संस्कृत साहित्य में मनुष्यों को 'मानव्य : प्रजा' कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि सभी मनुष्य मनु के वंशज हैं अथवा मनु की प्रजाएं हैं। वैदिक संस्कृति में राजा को पिता तथा प्रजा को पुत्रवत माना जाता था। मनु भी एक चक्रवर्ती राजा थे और साथ ही साथ मानवीय इतिहास के प्रथम राजा भी थे, अतः सभी प्रजाएं उनकी संतान थी। इसी मान्यता को स्थापित करते हुए तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है

ता : इमाः मानव्यः प्रजाः।

(तैति. सं. 5-1-5-6)

अर्थात्ये सभी प्रजाएं मनु के वंशज हैं।

आचार्य यास्क निरुक्त में इसी मान्यता को स्थापित करते हैं

मनोरपत्यं मनुष्यः (मानवः)।

(3-4)

अर्थात्मनु की संतान होने के कारण सबको मनुष्य या मानव कहा जाता है।

महाभारत में मानव वंश का आदि प्रवर्तक मनु स्वायंभुव को माना है

मनोर्वंशो मानवानाम् ततोऽयं प्रार्थतोऽभवत्।
ब्रह्मक्षत्रादयः तस्मात् मनोः जातास्तु मानवाः॥

(आदिपर्व 75-14)

अर्थात्मानव वंश मनु द्वारा प्रवृर्तित है। उसी मनु से यह प्रतिष्ठित

हुआ है। सभी मानव मनु की संतान हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उसी मनु के वंशज होने से मानव कहलाते हैं।

यह मानव वंश प्रवर्तक मनु स्वायंभुव ब्रह्मा का पुत्र था और प्रजापति था। इसकी पुष्टि महाभारत में की गई है

पैतामहः मनुर्देवः तस्य पुत्राः प्रजापतिः।

(आदि पर्व 66-17)

अर्थातपितामह, ब्रह्मा का पुत्र देववंशी मनु था उसको देव और प्रजापति भी कहते हैं।

इस प्रकार भारतीय प्राचीन साहित्य और इतिहास के अनुसार मनु मानवों के आदि पुरुष हैं। आदि पुरुष होने के कारण वे समस्त मानव जाति द्वारा समादरणीय हैं।

इसी तथ्य का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में भी मिलता है

प्रजापतये मनवे स्वाहा, इति। प्रजापतिर्वै मनुः। स हि इदं सर्वमनुत। प्रजापतिर्वै एतद् अग्रे कर्म अकरोत्।

(6-6-1-19)

अर्थात्प्रजापति मनु के प्रति मैं आदर प्रकट करता हूं। मनु निश्चय ही प्रजापति है। उस मनु ने सर्वप्रथम संसार की व्यवस्थाओं का निर्णय किया और उन्हें संवैधानिक रूप देकर उनका प्रवर्तन किया। उस प्रजापति मनु ने ही सर्वप्रथम इस यज्ञानुष्ठान को प्रजाओं में क्रियान्वित किया। इस प्रकार से मनु स्वायंभुव आदि समाज व्यवस्थापक था। अपने राज्य में उसने धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक सभी व्यवस्थाओं का प्रवर्तन कर समाज को सुसभ्य, सुसंस्कृत और व्यवस्थित बनाया।

यद्यपि पाश्चात्य विद्वान और विचारों के समर्थक भारतीय मनीषी भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान नहीं रहे और उन्होंने 'मनु' से 'मानव' शब्द के विकास को भ्रामक माना है, लेकिन भारतीय संस्कृत के व्याकरणाचार्यों ने मनु से मानव शब्द की उत्पत्ति को व्याकरण-सम्मत सिद्ध किया है। मानव के मनु के वंशज होने की पुष्टि प्राचीन भारतीय इतिहास, विदेशी इतिहास

और वैदिक साहित्य के उल्लेख भी कर रहे हैं। मनु की वंशावली भी इसी तथ्य को प्रमाणित कर रही है जो इस प्रकार हैराजर्षि स्वायंभुव मनु की पत्नी का नाम 'शतरूपा' था। दोनों की चार संतानें थीं दो पुत्र और दो पुत्रियां। एक पुत्र का नाम प्रियव्रत और दूसरे का उत्तानपाद था। पहली पुत्री का नाम आकूति तथा दूसरी का प्रसूति था। आकूति प्रजापति सुरुचि से विवाहित हुई और प्रसूति आदि-दक्ष से। उत्तानपाद को आदि प्रजापति अत्रि ने गोद ले लिया था। इसकी दो पत्नियां थीसुरुचि और सुनीति। सुरुचि से उत्तम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुनीति से प्रसिद्ध सम्राट ध्रुव हुआ। बड़े पुत्र प्रियव्रत का विवाह आदि कर्दम प्रजापति की पुत्री काम्या के साथ हुआ। इससे प्रियव्रत को दस पुत्र और दो पुत्रियां प्राप्त हुई। दस पुत्र थेअग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान, ज्योतिष्मान, द्युतिमान, दृव्य, सवन, मेधा, अग्निबाहू और मित्र।

मनु स्वायंभुव सात द्वीपों वाली पृथ्वी के एक छत्र सम्राट थे। मनु ने अपना मुख्य शासन-क्षेत्र अपने बड़े पुत्र प्रियव्रत को सौंप दिया। प्रियव्रत ने चक्रवर्ती राजा की भांति राज्य किया। उसके पुत्रों की मानसिक स्थिति एक जैसी नहीं थी। उनमें से तीन पुत्र-मेधा, अग्निबाहू और मित्र राज्य के प्रति उदासीन थे। क्षत्रिय वंश में जन्म लेकर वे क्षत्रियों जैसे कार्यों के प्रति आकर्षित न हो सके, और ब्राह्मण बन गए। शेष सातों पुत्रों को प्रियव्रत ने सात द्वीपों का शासन सौंप दिया।

जम्बुद्वीप (दक्षिणी-पूर्वी एशिया) बड़े पुत्र अग्नीध्र को मिला। प्लक्षद्वीप (यूरोपीय भूभाग) मेधातिथि को पाठान्तर से जिसका नाम इध्मजिह्व भी है मिला। शाल्मलिद्वीप (अटलांटिक क्षेत्र) वपुष्मान को पाठान्तर से जिसका नाम यज्ञबाहू भी है मिला। कुशद्वीप (अफ्रीका महाद्वीप) ज्योतिष्मान को पाठान्तर से जिसका नाम हिरण्यरेतस भी है मिला। क्रौंच द्वीप (उत्तरी अमेरिका) द्युतिमान को पाठान्तर से जिसका नाम घृतपृष्ठ भी है मिला। शाकद्वीप (दक्षिणी अमेरिका) दृव्य को पाठान्तर से जिसका नाम मेधातिथि है मिला। पुष्कर द्वीप (दक्षिणी ध्रुवखंड) सवन को पाठान्तर से जिसका नाम वीतिहोत्र है मिला।

आधुनिक युग में सभी द्वीपों की पहचान होनी कठिन है, क्योंकि अब

तक प्राकृतिक घटनाओं के कारण अनेकों भौगोलिक परिवर्तन हो चुके हैं। जहां द्वीप हैं वहां समुद्र बन चुके हैं और जहां समुद्र थे वहां द्वीप उभर आए हैं। फिर भी इस विवरण से इतना तो स्पष्ट है कि भौगोलिक परिवर्तन से पूर्ण सातों द्वीपों की पहचान और पूर्ण जानकारी भारतीयों को थी। इससे आगे यह जानकारी भी थी कि इन द्वीपों में मनुपुत्रों का शासन था।

भागवत पुराण में मनु के दूसरे पुत्र उत्तानपाद के संबंध में पर्याप्त विवरण दिया गया है। उसके अनुसार स्वायंभुव मनु दोनों पुत्रों को राज्य सौंपकर अपनी पत्नी शतरूपा के साथ तपस्वी का जीवन बिताने के लिए वन में चले गए थे। उत्तानपाद ने भी वृद्धावस्था आने पर अपना राज्य अपने बड़े पुत्र उत्तम को सौंप दिया था। यक्षों ने उत्तम के राज्य पर आक्रमण कर दिया और उस युद्ध में उत्तम मारा गया, लेकिन उत्तम के भाई ध्रुव ने यक्षों के आक्रमण को विफल किया और उन्हें पराजित करके स्वयं राज्य का स्वामी बना। इस युद्ध में अनेकों यक्ष मारे गए, लेकिन फिर भी युद्ध बंद नहीं हुआ। ध्रुव निरंतर यक्षों को मारते हुए आगे बढ़ता रहा और यक्षों का निर्मूलन करने पर उतारू हो गया।

युद्ध में बहुत विनाश होता देखकर ध्रुव के दादा मनु स्वायंभुव अनेक तपस्वियों और ऋषियों को साथ लेकर ध्रुव के पास पहुंचे और उसे युद्ध के दुष्परिणामों से अवगत कराया। ध्रुव ने अपने दादा तथा अन्य तपस्वियों के आग्रह को स्वीकार करते हुए युद्ध बंद कर दिया और अपनी राजधानी लौट गया। मनु स्वायंभुव भी अपने तप-स्थल पर लौट गए जो किसी सुनन्दा नदी के तट पर स्थित था।

मनु की वंशपरंपरा को सरलता से समझने के लिए यह क्रम बनाया जा सकता हैसातवें ब्रह्मा पद्मज का पुत्र मनु स्वायंभुव था। लोकप्रिय राजा, धर्मशास्त्र और आदि संविधान प्रणेता के रूप में मनु इतने प्रतिष्ठित हुए कि उसके बाद ब्रह्मा का वंश नाम गौण हो गया और मनु से मानव वंश चल पड़ा। इस वंश में चौदह 'मनु' नामधारी प्रतिष्ठित राज-ऋषि हुए जो इस प्रकार हैं

1. मनु स्वायंभुव (आदिराजा)।

2. मनु स्वरोचिष।
3. मनु उत्तम।
4. मनु तामस।
5. मनु रैवत।
6. मनु चाक्षुष।
7. मनु वैवस्वत।
8. मनु सूर्यसावर्णि।
9. मनु दक्षसावर्णि।
10. मनु ब्रह्मसावर्णि।
11. मनु धर्मसावर्णि।
12. मनु रूदसावर्णि।
13. मनु रौच्य।
14. मनु भौत्य।

इन चौदह मनुओं की प्रतिष्ठा और स्मृति में सृष्टि की अवधि को चौदह काल खंडों में बांटकर एक-एक का मनुओं के नाम से नामकरण किया गया है। इस एक काल खंड को मन्वंतर कहा गया है। इसमें सबसे प्रथम मन्वंतर का नामकरण मनु स्वायंभुव के नाम पर स्वायंभुव मन्वंतर किया है, जो इन्हें आदिपुरुष और इनके काल-खंड को आदि युग सिद्ध करता है। उन चौदह मनुओं में प्रथम चार तो मनु के पुत्र प्रियव्रत के वंश से है और छठे चाक्षुष मनु उत्तानपाद के राजा ध्रुव के वंश में उत्पन्न हुए थे।

इस समय सातवां मन्वंतरवैवस्वत मन्वंतर चल रहा है। मनु स्वायंभुव के समान सातवां मनु वैवस्वत भी उल्लेखनीय पुरुष रहा है। जैसे मनु स्वायंभुव सृष्टि के आदि काल का प्रमुख व्यक्ति है, उसी प्रकार ऐतिहासिक जल प्रलय के काल का विशेष व्यक्ति मनु वैवस्वत है। जयशंकर प्रसाद के काव्य कामायनी में वर्णित जल प्रलय का नायक यही मनु वैवस्वत था। इसने ही प्रलय के जल-अवतरण के बाद श्रद्धा के सहयोग से सृष्टि की रचना की थी।

अधिकांश देशों और धर्मों के साहित्य ने मनुकालीन जल प्रलय की भयावह घटना का किसी-न-किसी रूप में वर्णन किया है। यह वर्णन इस

संभावना को बल प्रदान करता है कि जब यह घटना घटी तब उन देशों के निवासी एक परिवार की तरह कहीं एक स्थान पर रहते थे और मनु वैवस्वत उनका शासक था।

वैवस्वत मनु की दो संतानें थीं। पुत्र इक्ष्वाकु और पुत्री इला। इक्ष्वाकु से सूर्य वंश का प्रारंभ हुआ और अयोध्या का राजवंश उसी परंपरा का है जिससे मर्यादापुरुषोत्तम राम हुए। आज के सूर्यवंशी इसी वंश के हैं।

पुत्री इला से (पति बुद्ध) क्षत्रियों का चंद्रवंश चला, जिसमें महाभारत तक कौरव-पांडव तथा श्री कृष्ण जैसे महापुरुष हुए।

आज के चंद्रवंशी लोग इसी परंपरा के वंशज हैं।

elibrary.thearyasamaj.org

मनु और मनुस्मृति के रचनाकार

मनुस्मृति हिन्दू धर्म का सबसे प्राचीन और प्रधान हिन्दू ग्रंथ है। यद्यपि जन सामान्य मनु को मनुस्मृति का रचयिता मानते हैं, किंतु विद्वानों में इसके रचयिता के संबंध में मतभेद हैं। कुछ का मत है कि पहले एक मानवशास्त्र था जो अब उपलब्ध नहीं है। उस मानवशास्त्र के रचयिता स्वायंभुव मनु थे, लेकिन उस मानवशास्त्र और प्रचलित मनुस्मृति की विषय-वस्तु में साम्य नहीं है। वर्तमान मनुस्मृति में अनेकों आपत्तिजनक अंश हैं और वे अंश स्वायंभुव मनु की चारित्रिक विशेषताओं के साथ तादात्म्य नहीं कर पा रहे हैं, अतः यह आसानी से कहा जा सकता है कि मनुस्मृति के रचयिता स्वायंभुव मनु नहीं थे। परंतु हिन्दुओं का बहुमत इस विचार को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है। हिंदुओं के विचार से यदि मनुस्मृति मनु की रचना नहीं है तो फिर मनु के प्रति एक विशेष वर्ग का आक्रोश क्यों है? क्यों वह वर्ग मनु के प्रति विषवमन करता है? इसका सीधा सा उत्तर यही है कि जन साधारण वर्तमान मनुस्मृति को मनु की रचना मानता है, जबकि उनकी यह अवधारणा सत्य से परे है। यह प्रमाणों सहित सिद्ध किया जा सकता है कि मनुस्मृति का वर्तमान स्वरूप मनु द्वारा रचित नहीं है। निम्न प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि में दिए जा सकते हैं।

1. मनु स्वभाव से अहिंसक थे। अपनी इस प्रवृत्ति के कारण वे नहीं चाहते थे कि उसके द्वारा रचित यह मानवीय सृष्टि युद्ध जैसे हिंसक कृत्यों में उलझे। उनके पौत्र ध्रुव ने जब अपने भ्राता उत्तम के हत्यारे यक्षों के प्रति युद्ध की घोषणा की तो मनु इस घोषणा से आहत हुए थे। उन्हें ध्रुव की

यह घोषणा कि मैं यक्षों का निर्मूलन करके ही विश्राम करूंगा विह्वल कर गई थी। वे नहीं चाहते थे कि किसी भी विशेष जाति का इस सृष्टि से निर्मूलन किया जाए। वे कुछ तपस्वियों और ऋषियों को साथ लेकर युद्ध-रत ध्रुव के पास गए थे और उन्होंने यक्षों के विरुद्ध युद्ध का समापन करा दिया था।

अहिंसक स्वभाव का कोई भी व्यक्ति कारुणिक भी होता है, लेकिन वर्तमान मनुस्मृति में मनु कारुणिक सिद्ध नहीं हो सके हैं। वे मनुष्यों के लिए मांसाहार का उपदेश करते हैं जो हिंसक होने का प्रमाण बनता है।

न मांस भक्षणे दोषों न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥ *(मनु. 5-65)*

अर्थात्मांस खाने, शराब पीने और शास्त्र विरुद्ध मैथुन ये सब प्राणियों की स्वाभाविक प्रवृत्तियां हैं। इनसे निवृत होना अत्यंत लाभप्रद है।

नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यापि।
धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तर एव च॥ *(मन. 5-30)*

अर्थात्खाने का अधिकारी मनुष्य भक्ष्यप्राणियों को प्रतिदिन खाते हुए भी किसी पाप का भागी या दोषी, नहीं होता, क्योंकि खाने के लिए प्राणी और उनको खाने वालों को परमात्मा ने ही बनाया है।

इस तरह के अनेकों श्लोक वर्तमान मनुस्मृति में हैं जो मनु को एक अकरुण और हिसंक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं, लेकिन मनु स्वभाव से अकरुण नहीं हैं। अतः यह मनुस्मृति मनु की रचना नहीं है।

2. स्वायंभुव मनु इस मानवीय सृष्टि का आदि पिता है। उससे ही इस सृष्टि का प्रारंभ है, अर्थात् वह सब प्रजा का पिता है या यह कहिए कि समस्त प्रजा उसकी संतान हैं। फिर एक पिता अपनी सन्तानों में भेद क्यों करेगा? उसके हृदय में तो समस्त प्रजा के लिए वात्सल्य होना चाहिए, लेकिन मनुस्मृति में मनु का व्यवहार प्रजा के प्रति अलग-अलग है

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तस्या चैव प्रसूतस्य निवकृतिनं विधीयते॥ *(मनु. 3-19)*

अर्थात्विवाह करके शूद्र स्त्री के अधरपान करने वाला और जिसके मुख पर शूद्रा का श्वास लगा हो तथा जो शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता।

सहासनमभिप्रेत्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ।
कटयां कृतङ्के निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत॥ *(मनु. 8-281)*

अर्थात्जो शूद्र ब्राह्मण के समान आसन पर बैठना चाहे तो उसकी कमर को दगवाकर उसे देश निकाला दे दें अथवा नितंबों को काट दें। इन उपरोक्त श्लोकों में मानवीय मूल्यों का विखंडन सिद्ध होता है, अतः मानवीय सृष्टि का रचयिता कोई भी आदि पुरुष ऐसे निन्दनीय श्लोकों की रचना नहीं कर सकता और मनु जैसा अहिंसक और कारुणिक तो बिलकुल भी नहीं। इससे सिद्ध होता है कि यह मनुस्मृति मनु की रचना नहीं है।

3. नारदस्मृति के अनुसार मनु ने 100000 श्लोकों 1080 अध्यायों एवं 24 प्रकरणों का एक धर्मशास्त्र लिखा और उसे नारद को पढ़ाया। पढ़ने के उपरांत नारद ने उस शास्त्र को 12000 श्लोकों तक सीमित (संक्षिप्त) कर दिया। यह संक्षिप्त संस्करण नारद ने मार्कण्डेय को पढ़ाया। मार्कण्डेय ने भी इसे 8000 श्लोकों में संक्षिप्त कर डाला। इस संक्षिप्त संस्करण को मार्कण्डेय ने सुमति भार्गव को दिया। भार्गव ने इसका अध्ययन करके इसे 4000 श्लोकों में संक्षिप्त कर दिया। कालांतर में इस धर्मशास्त्र का क्या स्वरूप हुआ यह अज्ञात है। यदि इसका अंतिम स्वरूप ही मनुस्मृति के नाम से विख्यात हुआ तो इसकी मौलिकता में संदेह का हस्तक्षेप अनिवार्य है। अवश्य ही इस ग्रंथ में संक्षिप्तीकरण के साथ-साथ संशोधन भी हुआ होगा और अंत में जो ग्रंथ निर्मित हुआ होगा उसमें संक्षिप्त कर्ताओं और संशोधन कर्ताओं के मंतव्य अवश्य सम्मिलित हुए होंगे। ऐसी स्थिति में इस ग्रंथ के रचनाकार मनु नहीं कहे जा सकते।

4. 'राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति' नामक ग्रंथ के संस्करण 2009 में डॉ. सुरेन्द्र कुमार का एक लेख संकलित है, जिसमें उन्होंने मनु के संबंध में डॉ. अम्बेडकर के दृष्टिकोण का वर्णन किया है। इस लेख में उन्होंने अम्बेडकर द्वारा रचित अम्बेडकर वाङमय के कुछ अंश उद्धत किए हैं। उनके

अनुसार अम्बेडकर ने मनुस्मृति विषयक एक नई मान्यता स्वीकार की है। उन्होंने इस स्वीकृति में यह स्पष्ट किया है कि मैं किस मनु नामक व्यक्ति का विरोध करता हूं। उनकी मान्यता है कि वर्तमान में उपलब्ध मनुस्मृति आदिकालीन मनु द्वारा रचित नहीं है, अपितु पुष्यमित्र शुङ्ग (ई. पूर्व 185) के काल में सुमति भार्गव नामक व्यक्ति ने इसे रचा है और उस पर अपना छद्म नाम मनु लिख दिया है।

डॉ. अम्बेडकर का यह मत एक सशक्त तर्क पर आधारित है। शुङ्ग काल में कुछ तथाकथित विद्वानों में एक प्रचलन बढ़ चुका था कि वे अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं के आधार पर कोई ग्रंथ लिखते थे और उसे सामाजिक मान्यता दिलाने के लिए उस युग के या पूर्व युग के किसी ख्याति प्राप्त लेखक का नाम लेखक के स्थान पर लिख देते थे। प्राचीन भारतीय इतिहास में 'मनु' आदर सूचक संज्ञा थी, अतः यह संभव था कि किसी संहिता को गौरव प्रदान कराने के उद्देश्य से उस संहिता का लेखक मनु बना दिया गया हो। आधुनिक मनुस्मृति ऐसे ही भ्रामक मनु की रचना है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार 'मनु' नाम सुमति भार्गव का छद्म नाम था और वह ही इसके वास्तविक रचयिता थे।

5. मनुस्मृति के समकालीन भाष्यकार डॉ. सुरेन्द्र कुमार का मत है कि वर्तमान मनुस्मृति में मनु के विचार तो हैं, लेकिन उनके शब्द नहीं है। अधिकांश विद्वानों का भी यही मत है। जिसको जन साधारण मनुस्मृति कहते हैं। उसका नाम भृगु संहिता है। कहते हैं कि इसे भृगु और उनके शिष्यों ने श्लोकबद्ध किया था।

यह भृगु संहिता भृगु की रचना है या अन्य किसी कीइस विषय में भी विद्वानों में विवाद है। इतना तो निश्चित है कि यह मनु की रचना नहीं है। यह तो मनुस्मृति के प्रथम श्लोक से ही स्पष्ट हो जाता है

मनुम्काग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः।
प्रतिपूज्य यथा न्यायमिदं वचनमब्रुवन॥

अर्थात्जब मनु महाराज एकान्त में बैठे हुए थे तो महर्षियों ने सत्कारपूर्वक आकर उनसे उपदेश के लिए प्रार्थना की।

यदि इस श्लोक को लिखने वाले मनु स्वयं होते तो इस प्रकार आरंभ न होता बल्कि इस प्रकार होता'जब मैं एकांत में बैठा हुआ था' तो महर्षियों ने मुझसे सत्कार पूर्वक कहा कि हमें उपदेश कीजिए।'

इस श्लोक को दृष्टिगत करते हुए यह माना जा सकता है कि मनु महाराज के उपदेशों को भृगु या अन्य किसी विद्वान ने छंदोबद्ध कर दिया हो। प्राचीन काल में उपदेष्टा मौखिक उपदेश दिया करते थे और बाद में उसके शिष्य या अनुयायी उन उपदेशों के भावों को छन्दबद्ध कर देते थे। अतः यह संभव है कि मनु के उपदेश पहले किसी गाथा के रूप में हों, फिर मानव-धर्मसूत्रों के रूप में आए हों और फिर वर्तमान मनुस्मृति के रूप में परिवर्तित हो गए हों। साथ ही साथ यह भी संभव है कि समय के साथ इस मनुस्मृति में प्रक्षिप्त श्लोक समाविष्ट कर दिए हों।

लेखक इस संभावना को भी स्वीकार करने की स्थिति में है कि स्वायंभुव मनु ने किसी मानवशास्त्र की रचना की थी, लेकिन अब वह मौलिक रूप में उपलब्ध नहीं है। उसको संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत नारद, मार्कण्डेय आदि विद्वानों ने संशोधित भी कर डाला हो और इस संशोधन प्रक्रिया में उन्होंने अपने निजी मन्तव्यों को इसमें समाविष्ट कर दिया हो। यही संशोधन कालांतर में प्रक्षिप्तों का रूप धारण कर गए हों। इस प्रकार प्रक्षिप्तों से युक्त मनुस्मृति उस मानव शास्त्र से भिन्न होगी ही जिसके रचयिता स्वायंभुव मनु बताए गए हैं।

भले ही विद्वान सशक्त प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दें कि वर्तमान मनुस्मृति के रचनाकार मनु नहीं थे, परंतु जन समुदाय इस तथ्य को स्वीकार नहीं करता है। उनकी दृष्टि में उपलब्ध मनुस्मृति के रचयिता मनु है। वह स्वायंभुव मनु है अथवा वैवस्वत मनु इससे उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ता है। यदि मनुस्मृति में कोई नारी विरोधी या शूद्र विरोधी विचार धारा है तो इसके लिए वे मनु को ही उत्तरदायी मानते हैं। एक विशेष वर्ग तो मनुस्मृति को नारी विरोधी और शूद्र विरोधी घोषित कर चुका है और इसके विरुद्ध आक्रोश प्रकट करते हुए इसे अग्निसात तक कर डाला है। निश्चत ही उनकी दृष्टि में मनुस्मृति के रचयिता मनु एक विवादास्पद ऋषि हैं।

विवादास्पद ऋषि की भूमिका में मनु

मध्यकाल तक मनु की स्थिति

मध्यकाल तक मनु अपनी अमर रचना मनुस्मृति के रचयिता के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल रहे। यह वह युग था जिसमें समाज मानव मूल्यों के प्रति संवेदनशील नहीं हुआ था। समाज पर सवर्ण वर्ग का आधिपत्य था। इस युग में मनुस्मृति को एक धर्म शास्त्र के रूप में संपूर्ण समाज ने मान्यता प्रदान की हुई थी, अतः किसी भी वर्ग का मनुस्मृति के किसी भी विधि-विधान के विरुद्ध उंगली उठाने का प्रश्न ही नहीं था। शोषित कमजोर वर्ग की ओर से भी मनु के प्रति कोई अनास्था का स्वर नहीं उभरता था।

आधुनिक युग में मनु की स्थिति

आधुनिक युग में जब भारतीय समाज मानव-मूल्यों के प्रति संवेदनशील हुआ तो मनु संदेह के वृत्तों में घिरते चले गए। उन्हें मनुस्मृति के श्लोकों के आधार पर जाति-प्रथा को बढ़ावा देने वाले, सवर्णों के हितचिंतक और शूद्रों के प्रति क्रूर सिद्ध किया जाने लगा। नारी और शूद्रों के प्रति उनकी संवेदनशून्यता मनुस्मृति में खोजी जाने लगी। नारी और शूद्रों को वेद पढ़ने और सुनने से वंचित रखने वाले श्लोक मनुस्मृति में खोज लिए गए।

मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन करने के कारण मनु के प्रति एक विशेष वर्ग का आक्रोश फूट पड़ा और उनके धर्मशास्त्र को अग्निसात कर डाला। इन संदिग्ध श्लोकों के रचयिता के रूप में उन्हें एक भ्रमित ऋषि घोषित

कर दिया और अन्ततः वे एक विशेष वर्ग के अनास्था के पात्र बनकर रह गए।

जाति प्रथा को बढ़ावा देने की भूमिका में मनु

निम्नलिखित कुछ श्लोकों के आधार पर आसानी से सिद्ध हो जाता है कि मनु मानव जाति को वर्गों (जातियों) में विभक्त करने का उपदेश करते हैं। वे ब्राह्मण वर्ग के लिए अधिक सहृदय हैं और शूद्रों के प्रति अति क्रूर।

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निवकृतिनं विधीयते॥ *(3-19)*

मनु कहते हैंविवाह करके शूद्र स्त्री के अधरपान करने वाला और जिसके मुख पर शूद्रा का श्वास लगा हो तथा जो शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता।

सहासनभमि प्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः।
कटयां कृतङ्के निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत्॥ *(8-281)*

जो शूद्र ब्राह्मण के समान आसन पर बैठना चाहे तो उसकी कमर को दगवाकर उसे देश निकाला दे दे अथवा नितंबों को काट दे।

न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत्।
अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता॥ *(5-104)*

जब तक अपने वर्ग के व्यक्ति विद्यमान हैं तब तक ब्राह्मणों के शव को शूद्रों से नहीं उठवाना चाहिए, क्योंकि शूद्रों के स्पर्श से दूषित शरीर की आहुति स्वर्ग में नहीं पहुंचाती।

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः।
शूद्रो ही धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते॥ *(10-129)*

समर्थ होते हुए भी शूद्रों को धन संग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि शूद्र धनवान होकर ब्राह्मणों को ही पीड़ा देता है।

स्वमेव ब्राह्मणो भुङक्ते स्वंवास्ते स्वं ददाति च ।
आनृशंस्याद ब्राह्मणस्य भुजंते हीतरे जनः॥ *(1-101)*

ब्राह्मण जो कुछ खाता है, पहनता है, देता है वह सब उसका ही हैयह सब ब्राह्मण का ही है। अन्य जो लोग खाते हैं वे सब ब्राह्मणों की कृपा से खाते हैं।

नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ॥ *(4-99)*

वेद को अस्पष्ट न पढ़े और शूद्रों के सामने न पढ़ें।

अध्याय तीन के श्लोक 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18 आदि में मनु का शूद्रों के प्रति घृणा-भाव दिखाई देता है

प्रथम रूप में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन द्विजों को विवाह के लिए अपने वर्ण की स्त्री उत्तम है, किंतु काम भावनाओं के आधार पर या उनके वशीभूत होकर विवाह में प्रवृत्त होने वाले लोगों के लिए यह व्यवस्था उत्तम हैशूद्र व्यक्ति की पत्नी केवल शूद्रा ही हो, वैश्य की पत्नी शूद्र वर्ण की स्त्री और अपने वर्ण की दोनों वर्णों से हो सकती है। क्षत्रिय की पत्नी शूद्र या वैश्य या अपने क्षत्रिय वर्ण की हो सकती है और ब्राह्मण की शूद्रा, वैश्या, क्षत्रिया सभी वर्णों की स्त्रियां पत्नी बन सकती हैं अर्थात् ब्रह्मण चारों वर्णों में विवाह कर सकता है।

आपत्ति में पड़े हुए ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए किसी भी विधान या अवस्था में शूद्रा को पत्नी बनाने का विधान नहीं है। द्विजाति लोग मोह या काम में फंसकर हीन जाति की स्त्री से विवाह करके सन्तान सहित अपने कुलों को ही शीघ्र शूद्रता को प्राप्त करते हैं अर्थात् ऐसे परिवार शीघ्र शूद्र बन जाते हैं।

द्विज शूद्र-स्त्री के साथ विवाह करने से पतित हो जाता है। यह अत्रि ऋषि और उतथ्य ऋषि के पुत्र गौतम का मत है। द्विज शूद्रा से सन्तान उत्पन्न करके पतित हो जाता है यह शौनक ऋषि का मत है। पुत्र का पुत्र भी यदि शूद्रा से उत्पन्न होता है तब भी वह पतित हो जाता है यह भृगु ऋषि का मत है।

शूद्र स्त्री के साथ रमण करके ब्राह्मण पतित हो जाता है, उससे संतान उत्पन्न करके तो अपने ब्राह्मणपन से ही गिर जाता है अर्थात् उसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो होता है।

जिस व्यक्ति के यहां देव, पितर और अतिथियों को उद्देश्य करके किए गए यज्ञ आदि कर्म किसी शूद्रा स्त्री की प्रधानता में होते हैं उसके भागों को पितर और देव ग्रहण नहीं करते और उसे स्वर्ग प्राप्त नहीं होता।

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणं दैवतं महत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाऽग्निर्दैवतं महत्॥

(9-317)

अविद्वान हो या विद्वान ब्राह्मण महान देवता है, जैसे शास्त्र विधि से प्रज्वलित की गई अग्नि और साधारण अग्नि दोनों ही महान देवता हैं।

एवयद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु।
सर्वथा ब्राह्मणः पूज्याः परमं दैवतं हितत्॥

(9-319)

चाहे ब्राह्मण कैसे भी अनिष्ट कार्यों में रत रहे फिर भी वे सब प्रकार से पूज्य हैं, क्योंकि ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ देवता है।

नारी के प्रति अनास्था (लिंग भेद में आस्था)

मनुस्मृति के अनेकों श्लोकों में मनु नारी के प्रति अकरुण दिखाई देते हैं। निम्न लिखित श्लोकों से यह बात स्वतः ही सिद्ध हो जाती है

त्रिशंद्वर्षो द्वहेत्कन्यां हृदद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्रयष्टवर्षोऽष्टवर्षा वा धर्म सीदति सत्वरः॥ *(9-94)*

गृहस्थ धर्म का लोप न चाहता हुआ तीस वर्ष का पुरुष 12 वर्ष की मनोहारिणी कन्या से और 24 वर्ष का आठ वर्ष की कन्या से विवाह करे।

विशीलः कामवृत्तों वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्या सततं देववत्पत्तिः॥

(5-154)

पतिव्रता स्त्री को दृष्टस्वभाव वाले परस्त्रीगामी और गुणहीन पति की भी सदा देवताओं के समान पूजा-सेवा करनी चाहिए।

नान्यास्मिन विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन ही निपुंजाना धर्म हन्युः सनातनम्॥

(9-94)

द्विजाति लोग विधवा नारी को अन्य देव अथवा सपिंड (समान वंशीय) पुरुष से नियोग की आज्ञा न दें। जो नियोग कराते हैं, वे सनातन धर्म को नष्ट करते हैं।

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्तिहतः।
मनुष्याणामपि प्रोक्तों वेने राज्यमं प्रशासति॥

(9-66)

इस नियोग प्रथा को विद्वानों ने पशुधर्म कहा है। यह राजा वेन के समय मनुष्यों में प्रचलित हुई थी।

मनुस्मृति के अध्याय दो के श्लोक 66 व 67 में मनु की लिंग-भेद में आस्था प्रदर्शित होती है

अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थ शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥

(2-66)

स्त्रियों की यह संस्कार की क्रिया शरीर की पवित्रता के लिए यथा समय और उपयुक्त क्रमानुसार पूर्णतः मंत्ररहित करनी चाहिए।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौ बासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥

(2-67)

स्त्रियों का विवाह संस्कार ही उनका वेदोक्त संस्कार कहा गया है, अर्थात् उनके लिए अलग से उपनयन संस्कार की आवश्यकता नहीं है। उनका पति की सेवा ही गुरुकुलवास है। घर के काम ही अग्निहोत्रादि धार्मिक क्रियाएं हैं, अर्थात् उनके लिए गुरुकुल निवास और यज्ञादि की आवश्यकता नहीं है।

मनुस्मृति के अध्याय तीन के श्लोक 239, 240 में मनु के नारी के प्रति विचार इस प्रकार हैं

चाडांल, सूअर, मुर्गा, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और नपुंसक भोजन करते हुए ब्राह्मण को न देखें। देवकर्म अथवा श्राद्धकर्म में, हवन करने में, दान देने में जो वस्तु इनके द्वारा देख ली जाती है, वह वस्तु फलहीन हो जाती हैवृथा जाती है।

यस्यास्तु न भवेद् भ्राता न विज्ञायेत वा पिता।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्म शंकया॥

(3-11)

जिस लड़की का कोई भाई न हो अथवा जिसके पिता का ज्ञान न हो, ऐसी कन्या से बुद्धिमान मनुष्य पुत्रिका धर्म की शंका से विवाह न करे।

मांसाहार में आस्था

मनुस्मृति के अनेकों श्लोकों में मनु मांसाहार के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। निम्नलिखित श्लोक मनु की इस प्रवृत्ति को सिद्ध करते हुए प्रतीत होते हैं

न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

(5-56)

मांस खाने, शराब-पीने और शास्त्र विरुद्ध मैथुन (व्यभिचार) में कोई दोष नहीं है। ये सब प्राणियों की स्वाभाविक प्रवृत्तियां हैं। इनसे निवृत्त होना अत्यन्त लाभप्रद है।

प्रेक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणनां च काम्यया।

elibrary.thevasanah.org

यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये॥

(5-27)

मनुष्य मंत्रों से पवित्र किया हुआ ब्राह्मणों की इच्छा हो तब शास्त्रोक्तविधि के अनुसार यज्ञ के लिए अर्पित मांस प्राण संकट में पड़ जाने पर खाले।

नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि।
धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च॥

(5-30)

खाने का अधिकारी मनुष्य भक्ष्य प्राणियों को प्रतिदिन खाते हुए भी किसी पाप का भागी या दोषी नहीं होता, क्योंकि खाने के लिए प्राणी और उनको खाने वालों को परमात्मा ने ही बनाया है।

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधि : स्मृतः।
अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते॥

(5-31)

यज्ञ के लिए मांस का खाना यह 'देवविधि' मानी गई है। इससे भिन्न विधि से मांस खाना तो 'राक्षसविधि' कही गई है।

क्रीत्वा स्वयं वाऽप्युत्पाद्य परोपकृतमेव वा।
देवान्पितॄंश्चार्ययित्वा खादन्मांसं न दुष्यति॥

(5-32)

खरीदकर अथवा स्वयं मारकर मांस तैयार करके अथवा दूसरे के द्वारा भेंट किए गए मांस को देवताओं और पितरों को अर्पण करके खाने से मनुष्य दोषभागी नहीं होता।

न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः।
यादृशं भवति प्रेत्य वृथामांसनि खादतः॥

(5-34)

धन के लिए पशुओं को मारने वाले व्यक्ति को भी वैसा पाप नहीं होता जैसा देवताओं के उद्देश्य के बिना मांस खाने वाले को मरने के बाद होता है।

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांस नात्ति मानवः।
स प्रेत्य पशुतां यान्ति संभानेकविंशतिम्॥

(5-35)

जो मनुष्य यथाविधि श्राद्ध या मधुपर्क में समर्पित मांस को नहीं खाता है, वह मरकर इक्कीस जन्मों तक पशुओं की योनि में जन्म पाता है।

यज्ञार्थ पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञश्च भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वद्योऽवधः॥

(5-39)

ब्रह्मा ने स्वयं ही यज्ञ के लिए सब यज्ञों की सिद्धि के लिए पशुओं को बनाया है। इस कारण से यज्ञ में की जाने वाली पशुओं की हिंसा, हिंसा नहीं होती।

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैव पाश्वो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः

(5-41)

मधुपर्क में, यज्ञ में, श्राद्ध और देवकर्म में केवल इन्हीं स्थानों पर पशुओं की हिंसा करनी चाहिए और कहीं नहीं, ऐसा मनु ने कहा है।

नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुद्रव्येन चाग्नयः।
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्धिनः॥

(4-28)

अग्नियां नवान्न और मांस की लोलुप होती हैं, अतएव जो द्विज नए अन्न और पशुमांस से अग्नि में हवन नहीं करते उनके प्राणों को ही अग्नियां खाना चाहती हैं।

library.thearyasamaj.org

यज्ञार्थ ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः।
भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा॥

(5-22)

ब्राह्मणों को यज्ञ के लिए उत्तम पशुओं और पक्षियों को मार लेना चाहिए और सेवक के पालन पोषण के लिए भी मार लेना चाहिए। प्राचीन काल में महर्षि अगस्त ने भी ऐसा ही किया था।

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा।
भक्ष्यान्पंचनं खेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः॥

(5-18)

सेहं नामक प्राणी, शल्यक, गोह, गेंडा, कछुआ और खरगोश इनको पांच नाखून वालों में से तथा ऊंट को छोड़कर एक और दांतवाले पशुओं को खाने योग्य कहा है।

मनु द्वारा समर्थित यज्ञ में हिंसा का वर्णन शतपथ ब्राह्मण के प्रथम अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में भी मिलता है जो इस प्रकार हैं

मनु के पास एक बैल था। उसमें असुर को मारनेवाली और शत्रु को मारने वाली वाणी घुस गई। जब वह बैल हुंकारता और चिल्लाता तो असुर राक्षस मर जाते। तब असुरों ने कहा"यह बैल तो बड़ा अनर्थ करता है, इसको कैसे मारे?'' असुरों के ऋत्विज थे 'किलात' और 'आकुली'।

वे दोनों बोले"कहते हैं कि मनु श्रद्धालु है, इसका परीक्षण करें।" तब वे मनु के पास गए और कहा"हे मनु! हम तुम्हारे लिए यज्ञ करना चाहते हैं।" मनु ने पूछा"किससे?" उन्होंने कहा, "इस बैल से (बैल की आहुति देकर)।'' मनु ने कहा"अच्छा।" बैल के मरने पर वाणी वहां से चली गई और मनु की पत्नी मनावी में घुस गई। जब मनु उसको बोलते हुए सुनते तो राक्षस और असुर मर जाते। तब असुरों ने कहा"यह तो और भी बुरा हुआ, क्योंकि बैल की अपेक्षा मनुष्य अधिक बोलता है।"

तब 'किलात' और 'आकुली' ने कहा"मनु को श्रद्धालु कहते हैं, चलो इसका परीक्षण करें। वे मनु के पास गए और कहा"हम तुम्हारे लिए

यज्ञ करना चाहते हैं।" मनु ने पूछा"किससे?" उन्होंने कहा, "इस तेरी पत्नी से, अर्थात् पत्नी की आहुति देकर।" मनु ने कहा"अस्तु"। उसकी पत्नी के मर जाने पर वाणी उसमें से निकलकर यज्ञ-पात्रों में घुस गई।

elibrary.thearyasamaj.org

मनु और मनुस्मृति के अवान्तरविरोध

एक ही प्रसंग में जो परस्पर अनेक विरोध या भिन्न-भिन्न मान्यताएं मिलती हैं उन्हें अवान्तरविरोध कहा जाता है। मनुस्मृति ऐसे ही अवान्तरविरोध से भरी पड़ी है। सोपान दो और तीन में ऐसे ही अवान्तरविरोधों का वर्णन किया गया है। मनुस्मृति में अनेकों स्थानों पर ऐसी विडम्बनापूर्ण स्थिति है कि पहले श्लोक में मनु जिस विधान का निर्माण करते हैं अगले कुछ श्लोकों में उसका खंडन करके उसके विरुद्ध एक अन्य विधान रच डालते हैं।

उदाहरण के लिए श्लोक (3-19) में मनु कहते हैं कि विवाह करके शूद्र स्त्री के अधरपान करने वाला और जिसके मुख पर शूद्रा का श्वास लगा हो उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता। वही मनु श्लोक (3-12) और (3-13) में उपदेश देते हुए दिखाए गए हैं कि वैश्य अपने वर्ण के अलावा शूद्रा से भी विवाह कर सकता है। क्षत्रिय अपने वर्ण के अलावा वैश्य युवती तथा शूद्रा से भी विवाह कर सकता है। ब्राह्मण अपने वर्ण से अलग भी क्षत्रिय युवती, वैश्य युवती और शूद्र युवती से भी विवाह कर सकता है।

मांसाहार के संबंध में मनु श्लोक (5-56) में कहते हैं कि मांस खाने-शराब पीने और शास्त्र विरुद्ध मैथुन में कोई दोष नहीं लगता। ये सब प्राणियों की स्वाभाविक प्रवृत्तियां है। इनसे निवृत होना अत्यंत लाभप्रद है। (5-30) खाने का अधिकारी मनुष्य भक्ष्य प्राणियों को प्रतिदिन खाते हुए भी किसी पाप का भागी या दोषी नहीं होता, क्योंकि खाने के लिए प्राणी और उनके खाने वाले को परमात्मा ने ही बनाया है।

वहीं मनु श्लोक (5-51) में कहते हैं"पशु को काटने की सलाह देने वाला, काटने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला और बेचने वाला, पकाने वाला, लाने वाला और खाने वाले ये सब पापी हैं।

श्लोक (5-22) में मनु हिंसा के पक्षधर हैं। उनके अनुसार ब्राह्मणों को यज्ञ के लिए उत्तम पशुओं और पक्षियों को मार लेना चाहिए और सेवकों के पालन-पोषण के लिए भी मार लेना चाहिए, प्राचीन काल में महर्षि अगस्त ने भी ऐसा किया था। वहीं मनु श्लोक (5-48) में उपदेश देते हैं कि प्राणियों की हिंसा के बिना कहीं मांस की उत्पत्ति नहीं होती और प्राणियों का वध सुख देने वाला नहीं है, अतः मांस को सर्वथा त्याग देना चाहिए।

श्लोक (9-39) में मनु को कहते हुए दिखाया गया है कि चाहे ब्राह्मण कैसे भी अनिष्ट कार्यों में रत रहे फिर भी वे सब प्रकार से पूज्य हैं, क्योंकि ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ देवता हैं। वहीं मनु श्लोक (2-143) में कह रहे हैं कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वेद को न पढ़कर अन्य शास्त्र में श्रम करता है वह जीवता ही अपने वंश के सहित शूद्रपन को प्राप्त हो जाता है। श्लोक (3-15) में भी मनु ब्राह्मणों को यही चेतावनी दे रहें कि द्विजाति लोग मोह या काम में फंसकर हीन जाति की स्त्री से विवाह करके, सन्तान सहित अपने कुलों को ही शीघ्र शूद्रता को प्राप्त कराते हैं।

इन उपरोक्त अन्तर्विरोधों से यह प्रश्न जन्म लेता है कि जब मनुस्मृति का प्रणेता एक ही व्यक्ति मनु है तो उसकी रचना में अन्तर्विरोध क्यों है? एक ही लेखक की रचना में उसमें वर्णित मान्यताओं में किसी प्रकार का भी विरोध नहीं होना चाहिए और मनु जैस महर्षि की रचनाओं में तो बिल्कुल भी नहीं, लेकिन विरोध है और यह विरोध ही मनुस्मृति को संदेह के घेरे में बंद कर देता है।

ऐसी विद्रूपता में दो संभावनाएं अस्तित्व में आती प्रतीत होती हैं। प्रथम-मनुस्मृति का लेखक अवैदिक प्रवृत्ति का एक भ्रमित लेखक है, जिसे न वेदों का ज्ञान है और न वह मानवमूल्यों के प्रति संवेदनशील है। वह एक ऐसा रचनाकार है जिसके पास अपना कोई मौलिक चिंतन नहीं है, इसलिए उसकी मान्यताएं बिखरी हुई हैं और उन्हें स्थायित्व देने का उसने कोई प्रयास नहीं किया है।

दूसरी संभावना यह बनती है कि परंपरा से प्राप्त मनुस्मृति मौलिक मनुस्मृति नहीं है, बल्कि एक मिश्रित धर्मशास्त्र है जिसमें समय-समय पर कुछ स्वार्थी, अज्ञानी और तथाकथित विद्वानों ने अपनी स्वनिर्मित मान्यताओं के श्लोक समाविष्ट कर दिए हैं। यही श्लोक प्रक्षिप्त श्लोक कहलाए गए हैं।

यद्यपि मनुस्मृति के रचनाकाल के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं, तथापि प्रमाणों के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि मनुस्मृति उपलब्ध समस्त लौकिक संस्कृत साहित्य से प्राचीन है। मनुस्मृति मूलतः कोई पूर्व निबंध शास्त्र नहीं था। मनु द्वरा ऋषियों की जिज्ञासा के उत्तर में जो प्रवचन दिए हैं उसका संकलन होने पर वह शास्त्र कहलाया, लेकिन उसका संकलन संभवतः किसी अन्य युग में हुआ और उस युग तक आते-आते इसमें अनेकों प्रक्षिप्तों ने अपना स्थान सुरक्षित कर लिया।

कोई भी शास्त्र या विधान अपने समय की व्यवस्थाओं या परिस्थितियों के अनुसार ही बनता है। समय व्यतीत हो जाने पर नई परंपराएं, नई समस्याएं या नए प्रचलन समाज में जन्म ले लेते हैं, परन्तु समाज प्रत्येक निर्णय के लिए उसी पुरातन शास्त्र की ओर देखता है, लेकिन वह पुरातन शास्त्र उनकी परिवर्तित अभिलाषाओं के साथ न्याय नहीं कर पाता। तब कुछ महत्वाकांक्षी तथा कथित विद्वान अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल उस शास्त्र में अपनी मान्यताएं प्रविष्ट कर देते हैं। उनकी यही मान्याताएं प्रक्षिप्त श्लोकों में रूपान्तरित हो जाती है।

यह संभव है कि कलांतर मैं अवैदित मान्यताओं का प्रवाह समाज में बह चला हो और उन विद्वानों ने उन्हीं के प्रकाश में ये प्रक्षिप्त मान्यताएं उस मूल मनुस्मृति में समाविष्ट कर दी हो।

मनु एक भ्रमित अवैदिक ऋषि थे या फिर मनुस्मृति में प्रक्षेप हैं इन दो संभावनाओं में से एक संभावना सही है। ऐसी कौन सी कसौटी हो सकती है जिसके आधार पर एक संभावना पर समाज की आस्था व विश्वास टेका जा सके? वह कसौटी ऐसी होनी चाहिए जिसका निष्कर्ष एक साधारण पाठक को भी मान्य हो सके। महर्षि दयानंद ने एक ऐसी ही कसौटी की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया था। उसी कसौटी के आधार पर स्वामी

दयानंद ने मनु को वैदिक ऋषि की मान्यता दी थी और मनुस्मृति में प्रक्षिप्त श्लोकों की विद्यमानता स्वीकार की थी।

महर्षि दयानंद सरस्वती मनुस्मृति से प्रक्षेपों का निर्मूलन करना चाहते थे, लेकिन वे असमय में ही चल बसे और वह कार्य पूर्ण न हो सका। उनके निधन के बाद इस दिशा में कुछ प्रयास हुए, लेकिन वे गंभीरता पूर्वक आगे न बढ़ सके। प्रक्षेपों को चिह्नित करने का ऐसा कोई सर्वमान्य मानदंड भी नहीं बन सका जिसके आधार पर सभी प्रक्षेपों की पहचान की जा सके। अन्त में यह कार्य प्रो. सुरेन्द्र कुमार के हाथों संपन्न हुआ।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार ने स्वामी दयानंद की कसौटी का विकास करके उससे उन मानदंडों का अनुसंधान किया, जिनसे मनुस्मृति के सभी श्लोकों की समीक्षा की गई। कई वर्षों के कठिन परिश्रम और अपने प्रज्ञा-बल से उन्होंने मनुस्मृति से प्रक्षेपों को चिह्नित करने में सफलता पाई। जहां डॉ. सुरेन्द्र ने मनु के साथ न्याय किया वहां दूसरी ओर भारतीय साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, और इतिहास से उस कलंक को दूर किया जिससे वैदिक साहित्य अवमूल्यन की ओर बढ़ता हुआ प्रतीत हो रहा था।

elibrary.thearyasamaj.org

भ्रांति के झरोखों में मनु

भारतीय साहित्य में मनुस्मृति की स्थिति

भारतीय साहित्य में मनुप्रोक्त स्मृति 'मनुस्मृति' एक सर्वाधिक चर्चित धर्मशास्त्र है। अपने रचना काल से ही यह सर्वाधिक प्रमाणिक, मान्य और लोकप्रिय ग्रंथ रहा है। मनुस्मृति एक विधि-विधानात्मक शास्त्र है। इसमें जहां व्यक्ति के नैतिक कर्त्तव्यों, मर्यादाओं, आचरण आदि का वर्णन है वहां श्रेष्ठ समाज-व्यवस्था के लिए एक संविधान भी है। इस संविधान निर्माता के रूप में जिस मुन का नाम लोकप्रिय हुआ है वह मनु कौन है? स्वायंभुव मनु अथवा वैवस्वत मनु, इस विषय में विद्वान भ्रांति के कोहरे से घिरे हुए हैं। कुछ विद्वान मनु से तात्पर्य स्वायंभुव मनु से लेते हैं और कुछ वैवस्वत से। दोनों मनु एक व्यक्ति के नाम नहीं है। फिर मनुस्मृति के रचयिता स्वायंभुव मनु है या वैवस्वत पहले इस विषय पर प्रकाश डालना समीचीन होगा। प्रथम उस मत की समीक्षा करते हैं जिसके अनुसार मनुस्मृति के प्रवक्ता स्वायंभुव मनु थे।

मनुस्मृति के प्रवक्ता–स्वायंभुव मनु

मनुस्मृति के समकालीन युग के सुविख्यात भाष्यकार डॉ. सुरेन्द्र कुमार ने स्वायंभुव मनु को मनुस्मृति का रचयिता सिद्ध किया है। इसके पक्ष में उन्होंने निम्न तर्क दिए हैं

1. मनुस्मृति की रचनाशैली एक प्रवचन-शैली है अर्थात् मनुस्मृति मूल रूप से प्रवचन हैं, जिनका बाद मे संकलन करके उनके शिष्यों ने एक शास्त्र

का रूप दिया है। प्रचलित मनुस्मृति में बीच-बीच में लगभग 30 स्थलों पर मनु का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन है। उनमें छः स्थलों पर स्पष्टतः स्वायंभुव विशेषण का प्रयोग किया गया है। इससे सिद्ध हो जाता है मनुस्मृति के रचयिता स्वायंभुव मनु हैं। इनमें से कुछ उदाहरण निम्न लिखित हैं

तस्य कर्मविवेकार्य शेषणाम नुपूर्वशः।
स्वायम्भुवो मनुर्षीमानिदं शास्त्रमकल्पयत्॥

(1-102)

उस ब्राह्मण के और क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र के कर्मों के ज्ञान के लिए स्वायंभुव बुद्धिमान मनु ने इस मनुस्मृति शास्त्र को बनाया है।

स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्य मनवोऽपरे।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वामहात्मानो महौजसः॥

(1-16)

इस स्वायंभुव मनु के वंश के अन्य महात्मा तथा महान ओजस्वी छः मनु और हुए हैं, जिन्होंने अपने-अपने काल में अपनी-अपनी प्रजाओं की सृष्टि की थी।

2. ऋषि भृगु स्वायंभुव मनु का पुत्र और शिष्य था। भृगु ऋषि अपने वचनों में मनुस्मृति के जिस रचयिता का उल्लेख करता है, निश्चय ही वह स्वायंभुव मनु होना चाहिए। निम्न श्लोकों से भृगु ऋषि मनु का पुत्र सिद्ध होता है

अहं प्रजा सिसृक्षुस्तु तपस्तरत्वा सुदुश्चरम्।
पतीनं प्रजानामसृजं महर्षि नादितो दश॥

(1-34)

प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा वाले मैंने (मनु ने) कठोर तपस्या करके पहले प्रजाओं के प्रतिरूप दस महर्षियों को उत्पन्न किया।

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥

ये दस प्रजापति ये हैंमरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद।

3. ऐतिहासिक ब्रह्मावर्त प्रदेश में स्थित बहिर्ष्मति नगरी को स्वायंभुव मनु की राजधानी मानते हैं। मनुस्मृति में ब्रह्मावर्त प्रदेश को धर्मशिक्षा, सदाचार का केन्द्र घोषित करके सर्वोच्च महत्व दिया गया है *(1-136 से 139)*।

इसी क्षेत्र में मनुस्मृतिका प्रवचन-प्रणयन हुआ था। इससे भी मनुस्मृति का रचयिता स्वायंभुव मनु होने का संकेत मिलता है।

4. निरुक्त में दाएं भाग के प्रसंग में कहा गया है

अविशेषण पुत्राणं दायो भवति धर्मतः।
विधुनानां विसर्गादौ मनु स्वायंभुवोऽब्रवीत॥

(निरु. 3-1-4)

धर्मानुसार पुत्र और पुत्री को समान भाव से दाय भाग में अधिकार होता है। यह मान्यता आदि से स्वायंभुव मनु ने व्यक्त की है।

यह प्राचीन उल्लेख भी मनुस्मृति को स्वायंभुव मनुकृत सिद्ध करता है। महाभारत में कई स्थलों पर स्वायंभुव मनु को एक धर्मशास्त्राकार के रूप में उद्धृत किया है। यथादुश्यन्त प्रेम-प्रसंग में आठ विवाहों का विधान कर्त्ता स्वायंभुव मनु को बताया है। शान्ति. 36वें अध्याय में मनुस्मृति के श्लोक (1-1 से 4) की घटना का यथावत वर्णन करते हुए कहा गया है कि ऋषि लोग धर्मजिज्ञासा के लिए स्वायंभुव के पास पहुंचे। (शांति. 335-44. 46) में एक धर्मशास्त्रकार के रूप में स्वायंभुव मनु का वर्णन है।

इन उपरोक्त तर्कों से डॉ. सुरेंद्र कुमार ने स्वायंभुव मनु को ही मनुस्मृति का रचनाकार माना है।

मनुस्मृति के प्रवक्ता-वैवस्वत मनु

कुछ विद्वान मनुस्मृति को मनु द्वारा रचित तो मानते हैं, लेकिन उस मनु

को स्वायंभुव मनु न मानकर वैवस्वत मनु मानते हैं। ऐसा मानने के उनके पास कुछ निम्न आधार हैं

1. मनुस्मृति के श्लोकों (1-61 से 62) में स्वायंभुव मनु के वंश का वर्णन करते हुए सातवें वैवस्वत मनु तक का उल्लेख है। प्रथम मनु काल में बाद के सातवें मनु का उल्लेख नहीं हो सकता, अतः यह सातवें वैवस्वत मनु की ही रचना है।

2. कौटिल्य अर्थशास्त्र में (प्र. 8-अ. 12) आदि काल में प्रजाओं द्वारा वैवस्वत मनु को राजा बनाने की घटना का वर्णन है। वहां जो कर व्यवस्था दी है वह प्रचलित मनुस्मृति (7-130 से 132) से मिलती-जुलती है, अतः यह मनुस्मृति वैवस्वत मनु द्वारा रचित है।

3. मनुस्मृति के निम्न श्लोकों में वैवस्वत मनु का उल्लेख मिलता है

स्वार्यंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मवनोऽपरे।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वः महात्मानो महौजसः॥

(1-61)

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वतसुत एव च॥

(1-62)

इस स्वायंभुव मनु के वंश में महात्मा और महान तेजस्वी अन्य छः मनु और हैं जिन्होंने अपने-अपने काल में अपनी प्रजाओं की सृष्टि की थी। वे हैं स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और विवस्वत् का पुत्र वैवस्वत।

इन दोनों श्लोकों से स्पष्ट है कि यह वर्तमान सृष्टि वैवस्तव मनु द्वारा सृष्ट है अतः यह मनुस्मृति वैवस्वत मनु द्वारा रचित है।

निष्कर्ष

उपरोक्त वर्णित दोनों प्रकार मनुओं के संदर्भ में दिए गए तर्कों के प्रकाश में निम्न निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है।

1. मनुस्मृति में ऐसा कोई अन्तःसाक्ष्य नहीं मिलता जिसमें वैवस्वत

मनु की शास्त्र-प्रवक्ता के रूप में चर्चा हो। उपर्युक्त स्थल को छोड़कर अन्यत्र कहीं वैवस्वत मनु का नाम भी नहीं है। उस स्थल पर भी केवल वंशावली है, वहां मनुस्मृति के प्रवचन से किसी प्रकार का संबंध नहीं दिखाया है।

2. मनुस्मृति में मनु के साथ भृगु का उल्लेख मिलता है। यह भृगु भी स्वायंभुव मनु का पुत्र व शिष्य था, वैवस्वत मनु का नहीं।
3. यद्यपि भारतीय साहित्य में दोनों मनु प्रथम राजा के रूप में वर्णित हैं, परंतु स्वायंभुव मनु की अधिक ख्याति धर्मशास्त्रकार के रूप में है, वैवस्वत का धर्मशास्त्रकार के रूप में उल्लेख नहीं के बराबर है।
4. वाल्मीकि रामायण में वैवस्वत मनु को सूर्यवंश का प्रथम राजा कहा है। उसी ने अयोध्या की स्थापना की। मनुस्मृति में अयोध्या का तत्कालीन प्रदेश या भौगोलिक स्थिति का कहीं कोई वर्णन नहीं है, जबकि इसके विपरीत स्वायंभुव के प्रदेश ब्रह्मावर्त का महत्व प्रदर्शित है।
5. मनुस्मृति में स्वायंभुव के परवर्ती मनुओं की अथवा वैवस्वत से पूर्व के मनुओं की किसी प्रकार की कोई चर्चा का न होना भी इसे स्वायंभुवकालीन सिद्ध करता है। एक स्थान पर केवल मनु के राज्य का उल्लेख है और वह प्रक्षिप्त है।

   श्लोक (1-79 से 80) में मन्वंतर काल परिणाम का वर्णन है। यदि मनुस्मृति वैवस्वत मन्वंतर काल की होती है वहां पूर्वमन्वंतरों के व्यतीतकाल और नामों का अवश्य उल्लेख मिलता। केवल मन्वंतर का वर्णन होना इस बात का द्योतक है कि यह प्रारंभिक मन्वंतर काल की कृति है, जबकि मन्वंतर केवल कालपरिमाण में प्रचलित हुआ। मनुओं के व्यक्तिगत नामों पर इनका नामकरण बाद में निर्धारित हुआ।
6. मनुस्मृति तथा अन्य ग्रंथों में वर्णित वंशावलियां भी मनुस्मृति का संबंध स्वायंभुव से सिद्ध करती है। मनुस्मृति के अनेकों स्थलों पर मनु का सीधा संबंध ब्रह्मा से प्रदर्शित किया है और ब्रह्मा

को विशेष महत्व भी दिया गया है, जैस ब्रह्मावर्त आदि। वैवस्वत मनु का ब्रह्मा से सीधा संबंध न कुलवंश से है और न विद्यावंश से, जबकि स्वायंभुव मनु का है। उसका नाम स्वायंभुव भी स्वयंभू अर्थात् ब्रह्मा का पुत्र या शिष्य होने से स्वायंभुव है।

मनु, स्वायंभुव मनु और महर्षिभृगु।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि मनु के संबंध में कोई निश्चित जानकारी नहीं है। मनु का जीवन वृतांत, व्यक्तित्व और कृतित्व सभी कुछ अनुमान पर आधारित हैं। मनुस्मृति के श्लोकों में तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में कहीं मनु, कहीं स्वायंभुव मनु और कहीं वैवस्वत मनु आता है। इन तीनों मनुओं से पाठकों के समक्ष एक भ्रमात्मक स्थिति बन जाती है। यद्यपि मनु की वंशावली कल्पित करके इस भ्रम को दूर करने का प्रयास किया गया है, लेकिन कुछ विद्वान उससे सन्तुष्ट नहीं हैं इनकी कल्पनाएं अन्य विद्वानों की कल्पनाओं से भिन्न हैं, जो इस प्रकार हैं

वर्तमान सृष्टि के आरंभ काल में ब्रह्म नामक एक ऋषि हुए थे, उनके पुत्र का नाम विराट था और विराट के पुत्र मनु हुए थे। यह अनुमान करना संभव है कि मनु के काल में कुछ राजनीतिक चर्चाएं चली होंगी। समाज को व्यवस्थित करने के लिए राजा की आवश्यकता अनुभव की होगी। इसी बीच मनु के मरीचि, भृगु आदि दस पुत्र हुए जिनमें से मरीचि को राजप्रबंध सौंपा गया था। परंतु जब इसके वंशज स्वायंभुव मनु राज करने लगे तब राजप्रबंध की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ और तभी से राजव्यवस्था के नियम बनने शुरू हुए।

स्वर्गीय आचार्य रामदेव वैदिक इतिहासकार ने मनु और स्वायंभुव मनु को पृथक-पृथक व्यक्ति माना है। उनके अनुसार स्वायंभुव मनु का वंश-वृक्ष इस प्रकार है

ब्रह्मा

विराट

मरीचिअत्रि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु प्रचेता वसिष्ठ भृगुनारद स्वायंभुव मनु

छांदोग्य ब्राह्मण में जो यह लिखा है

मनुर्वै यत्किचिंतदवत् तद्भेषजतायाः।

अर्थात् जो कुछ मनु ने कहा है वह औषधियों की भी औषधि हैं, वह संभवतः विराट के पुत्र मनु के विषय में ही हो, क्योंकि केवल 'मनु' नाम से विशेष ज्ञानी सबसे प्रथम वही प्रख्यात हुए थे। जो यह कहा जाता है कि मनु ने कोई मानवशास्त्र लिखा था जो अब उपलब्ध नहीं है संभवतः वह इसी विराट-पुत्र मनु द्वारा रचित होगा।

एक अनुमान यह भी है कि जो मानवशास्त्र मनु ने रचा होगा वह विलुप्त नहीं हुआ होगा बल्कि समय-समय पर उसमें समाज की आवश्यकताओं और प्रवृत्तियों के अनुकूल कुछ संसोधन या प्रक्षेप समाहित होते रहे होंगे और अंत में उसने वर्तमान मनुस्मृति का स्वरूप ग्रहण कर लिया होगा। वर्तमान मनुस्मृति को देखने से ज्ञात होता है कि महर्षि भृगु तथा स्वायंभुव मनु का नाम मानव धर्मशास्त्र के संबंध में बराबर आता है, जिसका कारण यही है कि महर्षि भृगु मानव धर्मशास्त्र के प्रथम प्रचारक तथा स्वायंभुव मनु मानव धर्मशास्त्र के नियमों को भली-भांति कार्य-परिणत करने वाले प्रथम बड़े राजा हुए हैं। यह भी संभव है कि इन्होंने मानव धर्मशास्त्र के प्रचार और उसके नियमों के क्रियान्वयन पर इतना श्रम किया हो कि उक्त शास्त्र के साथ-साथ इन लोगों का नाम संबंधित रखना इनसे पीछे की प्रजा के लिए आवश्यक सा हो गया हो।

एक अनुमान यह भी है कि मानव धर्मशास्त्र के निर्माण के दीर्घकाल के पश्चात् जब किसी अन्य विराट ने मानव धर्मशास्त्र को श्लोकबद्ध मनुस्मृति के आकार में परिणत किया होगा तब उसने ही महर्षि भृगु तथा महाराज स्वायंभुव मनु के मानव धर्मशास्त्र संबंधी कथनों को भी साथ ही साथ रख दिया होगा। इसी कारण से मनुस्मृति में कहीं मनु के नाम से श्लोक हैं, कहीं भृगु के नाम से और कहीं स्वांयभुव मनु के नाम से निम्न श्लोक इस तथ्य की पुष्टि कर रहे हैं

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥

(मनु. 2-7)

अर्थात्जो कुछ, जिस किसी के लिए धर्म मनु ने कहा है वह सब वेद में विद्यमान है, क्योंकि वेद सर्वज्ञानमय है।

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन् मानवोभृगः।
अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम्॥

(मनु. 12-2)

अर्थात्उस धर्मात्मा मनु के पुत्र भृगु ने महर्षियों से कहा कि इन सब कर्मयोग के निर्णय को सुनिए।

अलाबूं दारुपात्रं च मृण्मयं वैदलं तथा।
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायम्युवोऽब्रवीत॥

(मनु. 6-54)

अर्थात्स्वायंभुव मनु ने कहा कि यतियों के भिक्षापात्र तूंबी, लकड़ी, मिट्टी तथा बांस के होते हैं।

elibrary.theavasarai.org

प्रक्षेपों के साये में मनु

प्रक्षेप का अर्थप्रक्षेप का अर्थ मिलावट होता है। इसे क्षेपक अथवा प्रक्षिप्त भी कहते हैं। किसी ग्रंथकार के ग्रंथ में ग्रंथकार की सहमति बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मिलाए गए विचार को प्रक्षेप कहते हैं। इस प्रक्षेप से ग्रंथ की मौलिकता प्रभावित होती है। यह आवश्यक नहीं कि प्रक्षेप विरोधी विचारयुक्त ही हो वह उस ग्रंथ की मान्यताओं का समर्थक भी हो सकता है।

कुछ लोगों का कहना है कि मनुस्मृति में प्रक्षेप नहीं है। यह वर्तमान में जिस रूप से उपलब्ध है यही इसका मौलिक रूप है। ऐसे लोग या तो किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं अथवा मनुस्मृति के गंभीर अध्ययन से वंचित हैं। एक साधारण पाठक भी मनुस्मृतियों में परस्पर विरोधी और प्रसंग विरोधी अवधारणाओं को देखकर सरलता से कह सकता है कि मनुस्मृति में प्रक्षेपों की भरमार हैं।

भारतीय संस्कृति और साहित्य बहुत प्राचीन है। यह श्रुति के रूप में गुरु शिष्य परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होता रहा है। इनमें से कुछ हस्तलिखित पांडुलिपी के माध्यम से भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता आया है। यह जितने अधिक लोगों के संपर्क से होता हुआ आगे बढ़ता रहा है उसमें उतना ही अधिक प्रक्षेप समाविष्ट होता रहा है। कोई भी प्राचीन भारतीय साहित्य प्रक्षेपकों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा है। रामायण, महाभारत, गीता, निरुक्त, चरकसंहिता, मनुस्मृति आदि प्रक्षेपों से अछूती नहीं रही है।

'गरुड़ पुराण' का निम्नलिखित श्लोक प्रक्षेप का एक सशक्त प्रमाण है, जो यह प्रदर्शित कर रहा है कि दूसरी संस्कृति के जो लोग वैदिक संस्कृति में सम्मिलित हुए थे, उन्होंने अपने स्वार्थ या किन्हीं निजी कारणों से भारतीय ग्रंथों में प्रक्षेप किए हैं

दैत्याः सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा,
कलौयुगे भारते षट सहस्रधाम्।
निष्कास्य कांश्चित् नवनिर्मितानां
निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम्॥

(ब्रह्मकांड1-59)

अर्थात्इस कलियुग में महाभारत में परिवर्तन-परिवर्धन किया जा रहा है। दैत्यवंशी लोग स्वयं को ब्राह्मण कुल का बताकर कुछ श्लोकों को निकाल रहे हैं और उनके स्थान पर नए-नए श्लोक रचकर डाल रहे हैं।

महाभारत का यह निम्नलिखित श्लोक भी प्रक्षेप की प्रवृत्ति को प्रमाणित कर रहा है

सुरा मत्स्याः पशोर्मासम् आसवं कृशरौदनम्।
धुर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद् वेदेषु विद्यते॥
अव्यवस्थित मर्यादैः विमूढैर्नास्तिकैः नरैः।
संशयात्ममिरव्यक्तैः हिंसा समनुवर्णिता॥

(शांति पर्व 265-9,4)

अर्थात्मदिरासेवन, मत्स्यभोजन, पशुमांस, आसव, लवणान्त की आहुति इनका विधान वेदों में नहीं है। यह सब धूर्त लोगों ने प्रचलित किया है। मर्यादाहीन, मद्य-मांसादि लोलुप, नास्तिक, आत्मा-परमात्मा के प्रति संशयग्रस्त लोगों ने गुपचुप तरीके से वैदिक ग्रंथों में हिंसा संबंधी वर्णन मिला दिए हैं।

इसी प्रकार मनुस्मृति में भी समय-समय पर प्रक्षेप हुए हैं और इन प्रक्षेपों ने मनुस्मृति की मौलिकता प्रभावित की है। वेदों के बाद मनुस्मृति सबसे प्राचीन धर्मशास्त्र है। इस नाते मनुस्मृति में अन्य ग्रंथों की तुलना में सर्वाधिक प्रक्षेप हुए हैं। मनुस्मृति का संबंध मानव की दैनंदिन दिनचर्या

से था, क्योंकि यह मानव जीवन और समाज का विधि ग्रंथ था, अतः इसमें प्रक्षेप होने की संभावना अधिक थी।

मनुस्मृति नाम का यह धर्मशास्त्र वेदों पर आधारित है। इसमें मनु कहते हुए दिखाए गए हैं"मैंने यह ज्ञान ब्रह्मा से लिया है और भृगु को बताया है। अब तुम्हें इस ज्ञान से भृगु ही अवगत कराएंगे।"

भृगु ने मनु की उपस्थिति में यह ज्ञान जिज्ञासु, ऋषियों को बताया और बाद में यह गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा और कालांतर से हस्तलिखित पांडुलिपि के द्वारा सन 1813 तक आगे बढ़ता रहा। सन 1813 में यह कलकत्ते में मुद्रित हुआ। उस समय इसमें 2694 श्लोक और 12 अध्याय थे। भृगु काल से लेकर सन 1813 तक इस धर्मशास्त्र को अल्पज्ञ और अवैदिक विचारधारा के तथाकथित विद्वानों ने प्रक्षेपकों से प्रदूषित किया है और मनु को एक खलनायक बनाकर समाज के सम्मुख खड़ा किया है।

'वेदोऽखिलो धर्ममूलक'। अर्थात् वेद ही धर्म के मूलाधार है। (मनु 2-13) यह मान्यता उस महर्षि की है जो मनुस्मृति के रचनाकार होने के नाते समाज के कुछ विशेष वर्गों के लिए खलनायक कहलाए।

मंत्रार्थों के साक्षात दृष्टा ऋषि-मुनियों ने वेदों के मौलिक सिद्धांतों को समझकर ही वेदांग, ब्राह्मण, दर्शन धर्मशास्त्र आदि ग्रंथों की रचना की। ये ग्रंथ निश्चय ही मानव के लिए कल्याणकारी हैं। ऋषियों के समक्ष एक अव्यवस्थित समाज था। उस समाज की इकाइयों के समक्ष न समाज को व्यवस्थित करने का संकल्प था और न अपने उद्देश्यों का ज्ञान था। ऋषियों ने मानव की सुख समृद्धि और उन्हें अपने लक्ष्य के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए इन ग्रंथों की रचना की। महर्षि मनु ने इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मनुस्मृति की रचना की।

महर्षिमनु वेदों को अपौरुषेय मानते थे अतः वेदों के प्रति उनके मन में गहन श्रद्धा थी। इन्हीं भावनाओं को आधार बनाकर उन्होंने मनुस्मृति को वेदों के सारांश का रूप दिया। महर्षि मनु अपने समय के एक प्रख्यात तत्त्वदृष्टा, धर्मवेत्ता ऋषि थे। इसी सर्वमान्यता के कारण कुछ ऋषि अपनी जिज्ञासा लेकर उनके पास आए। उनकी शंका समाधान के लिए मनु ने जो प्रवचन दिए वही मनुस्मृति के रूप में संकलित होकर इस विश्व के समक्ष

आए, लेकिन यह वैदिक संस्कृति और महर्षि मनु का दुर्भाग्य ही रहा कि कालांतर में जो मनुस्मृति समाज के समक्ष आयी उसमें मनु के मौलिक प्रवचन नहीं थे। उसमें उन प्रवचनों की भरमार थी जो बाद में उसमें समाहित किए गए थे। वे श्लोक जो न वैदिक संस्कृति की आत्मा के अनुकूल थे और न महर्षिमनु की भावनाओं के द्योतक। उन श्लोकों ने मनुस्मृति को एक समाज विरोधी ग्रंथ में रूपांतरित कर डाला। इन्हीं श्लोकों को प्रक्षिप्त श्लोक कहा गया। इन अल्पज्ञानी, स्वार्थी और समाज विरोधी तथाकथित विद्वानों ने मनुस्मृति में ही नहीं बल्कि सभी वैदिक ग्रंथों में इन प्रक्षिप्तों को समाहित कर डाला और उनकी इस प्रदूषित प्रवृत्ति ने कुछ विशेष वर्गों को आहत एवं आक्रोशित किया है।

'एक विवादास्पद ऋषि की भूमिका में मनु' नामक अध्याय में उन श्लोकों का वर्णन किया गया है जो प्रक्षिप्त हैं। इन श्लोकों से निश्चय ही शूद्रों और नारी की स्थिति को गहरा आघात लगता है। एक सभ्य समाज में निर्बल वर्गों और नारी की दशा इतनी दयनीय नहीं हो सकती जैसी मनुस्मृति के श्लोकों से होती हुई प्रतीत होती है। इन श्लोकों से मनु के प्रति इन वर्गों का आक्रोशित होना स्वाभाविक है। इन्हीं तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए भीमराव अम्बेडकर ने मनुस्मृति को शूद्र और नारी विरोधी सिद्ध किया था और इसके बहिष्कार की घोषणा कर डाली थी। इन प्रक्षिप्त श्लोकों से निश्चय की मनु की छवि को क्षति पहुंची है।

जन सामान्य इतना चिन्तनशील नहीं होता कि वह आत्मविश्लेषण द्वारा किसी घटना के मूल में पहुंच सके। वह घटना की केवल ऊपरी सतह को देखता है और उसी के आधार पर अपना निर्णय सुरक्षित कर लेता है, लेकिन विद्वान पुरुष तार्किक प्रक्रिया से किसी घटना के मूल तक पहुंचने का प्रयास करता है। मनुस्मृति में शूद्रों और नारी गरिमा के विरुद्ध वर्णित श्लोकों की ऊपरी सतह को देखकर जन सामान्य का निर्णय मनु के विरुद्ध रहा है। उन्होंने मनु को एक खलनायक घोषित कर दिया और मनुस्मृति को अग्निसात तक कर डाला, लेकिन मनीषी वर्ग ने इन श्लोकों के प्रति संदेह प्रकट करके यह सिद्ध कर दिया कि ये श्लोक महर्षि मनु के नहीं हैं, बल्कि प्रक्षिप्त हैं। उनके इस निर्णय में यह अवधारणा आधार बनी थी

कि मनु की वेदों में गहरी आस्था है और वे वेदों को धर्म का मूल मानते हैं, अतः वेद समर्थक कोई भी व्यक्ति शूद्रों और नारी के प्रति ऐसी घृणित दृष्टि नहीं रख सकता।

भीमराव अम्बेडकर एक प्रखर मनीषी थे। वे इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि मनुस्मृति में वर्णित शूद्रों की गरिमा के विरुद्ध श्लोक प्रक्षिप्त हैं, अतः उनको मनु से संबंधित करना मनु के प्रति अन्याय है, लेकिन अपनी किसी राजनीति के अंतर्गत वे उन्हें प्रक्षिप्त घोषित न करके मनुस्मृति को मौलिक श्लोक ही मानते रहे हैं और हिंदुओं के प्रति उस निर्बल वर्ग की घृणा को उभारते रहे।

भारतीय विद्वानों ने ही नहीं पाश्चात्य विद्वानों ने भी मनुस्मृति में प्रक्षेपों की विद्यमानता स्वीकार की है। पाश्चात्य शोधकर्त्ता वूलर, जे. जौली, कीथ, मैक्डोनल, मैक्समूलर आदि ने मनुस्मृति सहित प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रक्षेपों का होना सिद्धांततः स्वीकार किया है। मनुस्मृति के प्रथम पाश्चात्य समीक्षक न्यायधीश सर विलियम जोन्स ने उपलब्ध 2685 श्लाकों में से 2005 श्लोकों को प्रक्षिप्त घोषित किया है। उनके विचार से मनुस्मृति में केवल 680 श्लोक ही मौलिक हैं।

मनुस्मृति के कुछ भारतीय भाष्यकारों ने प्रक्षेपकों की संख्या इस प्रकार मानी है

विश्वनाथ नारायण माण्डलीक	148
हरगोविंद शास्त्री	153
जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे	100
जयंतकृष्ण हरिकृष्ण देव	59

महात्मा गांधी ने अपनी 'वर्णव्यवस्था' नामक पुस्तक में स्वीकार किया है कि वर्तमान मनुस्मृति में पाई जाने वाली आपत्तिजनक बातें बाद में की गई मिलावटें हैं। भारत के पूर्व राष्ट्रपति और दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन, श्री रवींद्रनाथ टैगोर आदि विद्वान भी मनुस्मृति में प्रक्षेपों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

मनुस्मृति में श्लोकों की संख्या भी काल सपेक्ष घटती-बढ़ती रही हैं, जो मनुस्मृति की मौलिकता को प्रभावित करती हैं। मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि (9वीं शताब्दी) की तुलना में कुल्लुकभट्ट (12वीं शताब्दी) के

संस्कारण में एक सौ सत्तर श्लोक अधिक हैं, जिन्हें कुल्लुकभट्ट के संस्करण में कोष्ठक में दिखाया गया है। अन्य प्राचीन टीकाओं में भी कुछ श्लाकों और पाठों का अंतर है।

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानंद ने अपने ग्रंथ में गतशती में सर्वप्रथम यह सुस्पष्ट घोषणा की थी कि मनुस्मृति में अनेक प्रक्षेप किए गए हैं। उन्होंने कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों को चिह्नित भी किया है और प्रक्षिप्त श्लोकों को चिह्नित करने के कुछ मानदंड भी बनाए हैं। उन्होंने घोषणा की थी कि 'मैं प्रक्षेप रहित मनुस्मृति को ही प्रमाण मानता हूं।' वे मनुस्मृति से प्रक्षेपों को बहिष्कृत करना चाहते थे, लेकिन असमय में ही उनका निधन हो गया और प्रक्षेप रहित विशुद्ध मनुस्मृति का उनका स्वप्न अधूरा ही रह गया।

उनके स्वर्गवास के उपरांत इस दिशा में कुछ प्रयास हुए भी, लेकिन वे इतने गंभीर नहीं हुए कि जन सामान्य का विश्वास जीत सकें और न ही ऐसे मानदंडों का विकास किया जा सका जिसके आधार पर प्रक्षिप्त श्लोकों को चिह्नित किया जा सके। अंत में इस दिशा में सर्वाधिक गंभीर प्रयास समकालीन युग के मनुस्मृति भाष्यकार डॉ. सुरेन्द्र कुमार ने किया उन्होंने स्वामी दयानंद का अनुकरण करते हुए मानदंडों का विकास किया जिनके आधार पर मौलिक श्लोक और प्रक्षिप्त श्लोकों की पहचान की जा सके वे मानदंड निम्न प्रकार हैं

1. विषय विरोध।
2. प्रसंग विरोध।
3. परस्पर विरोध।
4. अवान्तर विरोध।
5. पुनरुक्ति।
6. शैली विरोध।
7. वेद विरोध।

डॉ. सुरेंद्र कुमार ने मनुस्मृति के समस्त श्लोकों को इन मानदंडों के सामने से गुजारा और प्रक्षिप्तों को चिह्नित कर लिया फिर महर्षि दयानंद के स्वप्नों को सम्मान देते हुए विशुद्ध मनुस्मृति की रचना कर डाली। उनके इस कठिन परिश्रम से जहां मनु को न्याय मिला वहां वैदिक साहित्य पर

जनसामान्य का पुनः विश्वास स्थिर हो सका।

elibrary.thearyasamaj.org

मनु की दृष्टि में शूद्र

भारतीय समाज में मनुस्मृति की स्थिति

हिंदू धर्मशास्त्रों में वेद के बाद मनुस्मृति का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। गत दो सौ वर्षों में भारत के सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में सबसे अधिक चर्चा किसी ग्रंथ की हुई है तो वह मनु द्वारा रचित मनुस्मृति की है। इन दो सौ वर्षों में सबसे अधिक राजनीति भी इसी ग्रंथ के ऊपर है। जहां कुछ वर्गों ने इसे धार्मिक मान्यताओं तथा सामाजिक एवं राजनीति व्यवस्था को समझने के लिए पढ़ा हैं वहां अन्य वर्गों ने इसे अपने निहित स्वार्थ सिद्ध करने के लिए भी पढ़ा है। इसके पाठकों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है, जो निम्न प्रकार है

1. धार्मिक आस्था पर आधारित पाठक वर्ग,
2. इसे शूद्र विरोधी सिद्ध करके इस पर राजनीति करने वाला वर्ग,
3. धर्मान्तरण के लिए प्रोत्साहित करनेवाला वर्ग।

श्रद्धालु हिंदु मनुस्मृति को पढ़कर इसमें अपनी आस्था खोजते हैं। जहां इस ग्रंथ में कर्तव्य-अकर्तव्य, न्याय-विधान और भारतीय सामाजिक संविधान का बोध होता है, वहां मानव के अंतिम लक्ष्य मोक्ष का भी विधान है, लेकिन कुछ कुटिल राजनीतिज्ञ जो समाज में घृणा का वातावरण उत्पन्न करके शूद्रों के प्रति सदभावना का प्रदर्शन करते हैं इसे अपने राजनैतिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पढ़ते हैं। वे मनुस्मृति से ऐसे प्रक्षिप्त श्लोक को खोज लेते हैं जिसमें शूद्रों की गरिमा को आहत किया गया है। इसके लिए वे मनुस्मृति के श्लोक (8-281) को खोज ही लेते हैं

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यायकृष्टजः।
कटयां कृतङ्के निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत॥

अर्थात्जो शूद्र ब्राह्मण के समान आसन पर बैठना चाहे, तो उसकी कमर को दगवाकर उसे देश निकाला दे दे अथवा नितंबों को काट दे।

जब एक राजनैतिक तथाकथित नेता शूद्रों के समक्ष मनुस्मृति का यह श्लोक पढ़ेगा तो क्या एक भी शूद्र मनुस्मृति के प्रति आस्था प्रदर्शित कर सकेगा? वह निश्चय ही इस ग्रंथ को सवर्ण हिंदुओं और ब्राह्मणों का पक्षधर सिद्ध करेगा और शूद्रों के मन में सवर्ण हिंदुओं के प्रति घृणा का अंधड़ उत्पन्न कर देगा। फिर क्यों नहीं शूद्र उस व्यक्ति के अनुयायी हो जाएंगे। ऐसा भीमराव अम्बेडकर ने किया है।

भीमराव अम्बेडकर एक प्रखर विद्वान थे उन्हें हिंदू शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान था। उन्हें इतना भी ज्ञान था कि मनुस्मृति में शूद्रों की गरिमा को आहत करने वाले श्लोक मनु द्वारा लिखित नहीं हैं; वे प्रक्षिप्त हैं, अतः उन्हें मनु से संबंधित करना मनु जैसे महर्षि के प्रति अनास्था और अन्याय है, लेकिन अम्बेडकर को शूद्रों के मन में हिंदुओं के प्रति घृणा उत्पन्न करनी थी, जिसके फलस्वरूप शूद्रों को हिंदुओं से पृथक करके उनका स्वयंभू नेता बन सके। वे अपने इस अभियान में सफल रहे और स्वयं को दलितों के सामाजिक और राजनैतिक नेता के रूप में प्रतिष्ठित कर गए। उन्होंने एक बहुत बड़े भ्रम से मनु, मनुस्मृति और हिंदू धर्म के विरोध को दलितों का प्रिय विषय बना दिया। इसकी सीढ़ी बनाकर अम्बेडकर ने अपने पीछे एक शक्तिशाली समुदाय संगठित कर लिया था।

ईसाई मिशनरियों द्वारा मनुस्मृति के अध्ययन का तर्क सभी के लिए बोधगम्य है। ईसाई मिशनरियों का उद्देश्य दलितों को ईसाई धर्म में धर्मान्तरित करना था। उसके लिए उन्हें भारतीय साहित्य को दलित विरोधी सिद्ध करना था, मनुस्मृति एक ऐसा प्रमुख ग्रंथ था जिसकी संवेदनशीलता से भारतीय समाज अवगत था। अपने अध्ययन द्वारा मिशनरी के संचालकों ने मनुस्मृति के वे श्लोक चुन लिए जो प्रक्षिप्त तो थे ही शूद्रों की गरिमा के विरुद्ध भी थे।

जैसे

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिनं विधीयते॥

(मनु. 3-19)

अर्थात्विवाह करके शूद्र स्त्री के अधरपान करनेवाला और जिसके मुख पर शूद्रा का श्वास लगा हो तथा जो शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता।

कौन शूद्र मनुस्मृति के इस श्लोक को सुनकर हिंदू धर्म के प्रति आस्थावान रह सकेगा? क्यों न वह उस ईसाई धर्म में धर्मान्तरित का विचार बनाएगा जहां शूद्रों को सम्मानित स्थान मिल सकेगा और पुनर्वास के लिए आर्थिक सहायता भी। ईसाई मिशनरियों ने मनुस्मृति के ऐसे ही श्लोकों की खोज की और उनका प्रयोग शूद्रों के मन को परिवर्तित करने के लिए किया और उनका ईसाई धर्म में धर्मान्तरण करके अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। इन प्रक्षिप्त श्लोकों से निहित स्वार्थी, हिंदू विरोधी तत्वों ने शूद्रों के मन में मनुस्मृति और उसके रचयिता के प्रति जो घृणा उत्पन्न की थी वह समकालीन युग में भी कम नहीं हो पा रही है। अब नए-नए राजनीतिज्ञ मनुस्मृति के इन प्रक्षिप्त श्लोकों के दुष्प्रचार द्वारा अपना राजनैतिक समीकरण साध रहे हैं। सवर्णों को मनुवादी और दलितों को मनुविरोधी कहकर भारतीय समाज की समरसता को नष्ट करके ये राजनीतिज्ञ समाज में वर्ग-संघर्ष को बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभा रहे हैं, लेकिन कोई भी इस सत्य पर नहीं पहुंच रहा है कि मनुस्मृति में जो शूद्र विरोधी श्लोक हैं वे मनु द्वारा प्रणीत नहीं है, बल्कि उन्हें बाद में मनुस्मृति में समाहित किया गया है।

महर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति पर आरोप लगाने और उनके प्रति आक्रोश एवं विरोध प्रकट करने से पहले उन तथाकथित राजनीतिज्ञों और उनके अनुयायियों को मनु के चिन्तन और उनकी मानसिकता को समझना चाहिए और फिर यह निर्णय करना चाहिए कि आदि पुरुष मनु जिसने समाज के सुख और समृद्धि के लिए एक विशाल संविधान का निर्माण किया हो क्या वह मानवीय मूल्यों का विखंडन कर सकेगा और दलितों के विरुद्ध अपने शास्त्र में अपमान जनक विधि-विधान बना सकेगा?

महर्षिमनु का चिंतन और उनकी मानसिकता

मनुस्मृति के मौलिक मंतव्यों के आधार पर जब हम मनु का चरित्र चित्रण करते हैं अथवा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं तो हमें मनु मानवता-प्रिय मानसिकता के व्यक्ति दृष्टिगत होते हैं। जो व्यक्ति राजा का शीर्षस्थ पद लेने से इस कारण मना कर देता है कि 'मुझे भय है कि कहीं मुझसे कोई अन्याय या पाप न हो जाए,' जो व्यक्ति कठोर वाणी बोलने तक को सामाजिक अपराध वर्णित करता है, ऐसे उदात्त चरित्र का वह व्यक्ति क्या किसी भी मानव के लिए अत्याचार या अन्यायपूर्ण विधान कर सकता है?

मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोकों के आधार पर मनु के चरित्र और उनकी मानसिकता पर जो आक्षेप किए गए हैं वे मनुस्मृति के श्लोकों से ही अर्थहीन हो जाते हैं। मनुस्मृति के कुछ श्लोकों में हमें मानवता का चरमोत्कर्ष वहां दिखाई पड़ता है जहां मनु शूद्र वर्ण पर दयालु और न्यायप्रिय होकर अपराध के बदले तीनों वर्णों से कम अर्थात् सबसे कम दंड देने का विधान रचते हैं। मनुस्मृति के श्लोक (8-337 व 338) के अनुसार चोरी करने पर शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा और ब्राह्मण को चौंसठ या सौ या फिर एक सौ अट्ठाईस गुणा दंड देना चाहिए।

मनुस्मृति के कुछ अन्य श्लोकों में भी मनु शूद्रों (सेवकों) पर सहृदय दिखाई देते हैं

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु भृत्येषु चैव हि।
भुंजीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती॥

(मुन. 3-116)

अर्थात्विद्वान अतिथियों द्वारा भोजन करने पर और अपने सेवकों आदि के खा लेने पर उसके बाद शेष बचे भोजन को पति-पत्नी खाएं।

क्या इन श्लोकों के आधार पर मनु की मानसिकता का अध्ययन नहीं हो जाता? फिर हमारे पास ऐसा कौन सा तर्क बच जाता है जिसके आधार पर हम मनु को शूद्रों के प्रति कठोर सिद्ध करने पर तुल जाएं। इसके अतिरिक्त भी मनु स्वयं को वेदानुयायी कहता है और यहां तक घोषणा कर देता है

कि वेद सभी धर्मों का मूल है तो फिर मनु की मानसिकता वेदों की ऋचाओं पर ही टिकी होनी चाहिए और मनुस्मृति के श्लोक भी वेदों की मान्यताओं की परिधि से बाहर नहीं होने चाहिएं। यह सत्य है कि वेदों में शूद्रों के प्रति कोई भेद-भाव नहीं है फिर मनुस्मृति में क्यों होगा?

अब यहां एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब वेदों में वर्ग-भेद, जाति-भेद नहीं है तो महात्मा बुद्ध ने वेदों के प्रति विद्रोह क्यों किया था? इसके लिए भी वे अल्पज्ञानी तथाकथित विद्वान उत्तरदायी हैं जो वैदिक साहित्य के सत्य को तरोड़-मरोड़ कर उनके स्थान पर अपना मंतव्य थोप देते हैं। उन विद्वानों की उस दुष्प्रवृत्ति से वैदिक साहित्य विकृत हो जाता है और मानवीय मूल्यों के विरोध में खड़ा दिखाई देता है।

महात्मा बुद्ध का मूल उद्देश्य शूद्रों का उद्धार नहीं था और न वे समाज के किसी नैतिक या अनैतिक स्वरूप से चिंतित थे। उनका मूल उद्देश्य वैयक्तिक निर्वाण अर्थात् दुःखों से मुक्त होना था। उनके संघों के द्वार सभी शूद्रों के लिए खुले हुए नहीं थे। शूद्रों के लिए उनका आदेश था कि कोई भी शूद्र (सेवक) अपने स्वामी की स्वीकृति के बिना संघ में न आए। नारी के लिए भी महात्मा बुद्ध के आश्रमों के द्वार बंद थे। अन्त में जाकर वे आंशिक खुल पाए थे वे भी उनकी अनिच्छा के साथ।

वैदिक ग्रंथों के साथ यह विडंबना रही है कि जन सामान्य उनके ज्ञान को वैयक्तिक रूप से सीधे बिना किसी अन्य माध्यम के प्राप्त नहीं कर सकता था। मूल ग्रंथ और ज्ञान-पिपासू के मध्य उन ग्रंथों का कम से कम एक भाष्यकार होना आवश्यक था। अब यह भाष्यकार की मनोवृत्ति, निर्पेक्ष विद्वता पर निर्भर था कि वह भाष्य करते समय किसी श्लोक या ऋचा के मूल मंतव्यों के साथ कोई छेड़-छाड़ न करें, लेकिन ऐसे निर्पेक्ष भाष्यकार बहुत कम थे। कोई न कोई अपने आग्रहों से ग्रसित थे और उनका यह आग्रह भाष्य में हस्तक्षेप कर देता था तथा उस ग्रंथ का भाष्य उस भाष्यकार के मनोविकारों का दर्पण बन जाता था। वेदों के साथ भी यह त्रासदी रही है। वेदों को भी सीधे-सीधे नहीं पढ़ा जा सकता था। उनका ज्ञान भी भाष्यकारों द्वारा जन सामान्य तक पहुंचाया था, क्योंकि महात्मा बुद्ध वैदिक ग्रंथों या अन्य भारतीय साहित्य के मनीषी नहीं थे। इस रूप से वे सामान्य

जन के वर्ग में आते थे, अतः उनके द्वारा वेदों से जो ज्ञान प्राप्त किया गया वह भाष्यकारों की मनोवृत्ति की छलनी से छन-छन कर आया था। उस तथाकथित ज्ञान में शूद्रों के प्रति आवश्यक कोई भेदभाव की भावना होगी। व्यर्थ के कर्मकांड होंगे पशुवध जैसी हिंसा होगी। अतः महात्मा बुद्ध ने इस आधार पर वेदों का तिरस्कार कर डाला था।

महात्मा बुद्ध जैसे महापुरुष से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे वेदों का तिरस्कार न करके उस सत्य पर पहुंचते कि आखिर ऋषियों द्वारा प्रणीत वेदों में यह विकृति क्यों है तो उन्हें विदित हो जाता है कि विकार वेदों की ऋचाओं में नहीं, बल्कि भाष्यकार के मन में हैं और भाष्यकार के मन का प्रक्षेप ही वेदों को प्रदूषित कर गया है। इस स्थिति में महात्मा बुद्ध के लिए कल्याणकारी पथ था कि वे वेदों का सही भाष्य करते और गलत भाष्य से उपजी अनेकों विकृतियां वेदों से बाहर कर देते, लेकिन यह एक चुनौती भरा कठिन पथ था और वेदों का तिरस्कार करना एक सुगम पथ था, अतः महात्मा बुद्ध सुगम पथ के पथिक बन गए और शूद्रों के उद्धारक कहलाए।

महात्मा बुद्ध के इस सुगम पथ से भारतीय सभ्यता का पथ विघ्नों से अट गया था और हजारों वर्ष की अधीनता की वेदना को झेलते हुए यह आधुनिक काल में आंशिक ही खुल पाया है, लेकिन इस अवधि के मध्य एक असत्य ने सत्य का रूप धारण करके लाखों शूद्रों का धर्मान्तरित कर डाला और उन्हें हिंदुओं के समक्ष खड़ा कर दिया।

भारतीय संस्कृति को क्षति पहुंचाने वालों में भारतीयों का प्रयास ही सर्वाधिक है। मनु को शूद्रों के प्रति अकरुण और संवेदनहीन सिद्ध करने में भी भारतीयों ने काफी परिश्रम किया है, लेकिन वे मनु की मानसिकता का अध्ययन करने में परिश्रम न कर सके। यदि वे बिना किसी आग्रह के मनु का अध्ययन करते तो उन्हें पता लगता कि मनु वेदों से बाहर एक कदम भी नहीं चले हैं। उनका समस्त चिंतन, मनन, मान्यताएं एवं विधि-विधानों का आधार अपौरुषेय वेद रहा है। वे स्वयं कहते हैं

वेदोऽखिलो धर्म मूलम्।

(मनु. 2-6)

अर्थातमानव धर्म संबंधी सभी मान्यताओं, व्यवहारों एवं आदर्शों का आधार वेद है।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाण परमं श्रुतिः॥

(मनु. 2-13)

अर्थात्जो पुरुष अर्थ सुवर्णादिरत्न और काम स्त्री सेवनादि में नहीं फंसते हैं, उन्हीं को धर्म का ज्ञान होता है। जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद धर्म का निश्चय करें, क्योंकि धर्म अधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक-ठाक नहीं होता।

मनु की दृष्टि में मानव मात्र के लिए वेद ही सनातन दृष्टि है। वे कहते हैं

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं वेदशास्त्रमितिस्थितिः॥

(मन. 2-14)

अर्थात्पिता, संरक्षक, पालक विद्वानों एवं मनुष्यों का वेद ही सदा सनातन चक्षु है, क्योंकि वेद अपौरुषेय हैं एवं अनंत सत्य विद्याओं से युक्त हैं। ऐसा मेरा विचार है।

इतना ही नहीं मनु आगे भी कहते हैं कि वेद प्रामाणिक ग्रंथ हैं, अतः लोगों को अपने-अपने कर्त्तव्यों को अपने-अपने धर्म में स्थिर रहते हुए पालन करना चाहिए

श्रुति प्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै॥

(मनु. 1-127)

मनु की मान्यता है कि वेदों के द्वारा ही मनुष्य को संसार की वस्तुओं व धर्मों का प्रथम ज्ञान होता है (1-21), क्योंकि चारों वेद धर्म के प्रथम मूल-स्रोत हैं, अतः उनका कुतर्क आदि का सहारा लेकर खंडन नहीं करना

चाहिए

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रम तु वै स्मृतिः।
के सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निबंभौ।

(मनु. 1-29)

अर्थात्श्रुति को वेद समझना चाहिए और धर्मशास्त्र को स्मृति। ये श्रुति और स्मृति शास्त्र सब स्थितियों और सब बातों में कुतर्क न करने योग्य है।

योऽवमन्येत ते भूले हेतुशास्त्राश्रयाद द्विजः।
स साधुभिबहिष्कार्यो नास्तिको वेद निंदकः॥

मनु. (1-130)

अर्थात्जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्त ग्रंथों का तर्कशास्त्र के आश्रय से अपमान करे उसको श्रेष्ठ लोग जाति से बाहर कर दें, क्यों कि जो वेद की निंदा करता है, वही नास्तिक कहलाता है।

मनुस्मृति के इन श्लोकों से यह सिद्ध हो जाता है कि मनु का मनन, चिन्तन और विश्वास वैदिक मान्यताओं के ही अनुकूल हैं। अब हमें यह देखना चाहिए कि वेदों में शूद्रों की क्या स्थिति है।

वेदों में शूद्रों की स्थिति

वेदों में मानवीय समाज को चार भागों में विभक्त किया है जिन्हें वर्णों का नाम दिया हैब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। समाज में इनकी स्थिति और महत्त्व को ऋग्वेद में दर्शाया गया है

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्याः कृतः।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

(ऋग. 10-90-12)

अर्थात्'समाजरूपी पुरुष का ब्राह्मण रूप में मुख है। बल पराक्रम-गुण

युक्त क्षत्रिय रूप में बाहें हैं। खेती, व्यापार करने वाला वैश्य समुदाय मध्यभाग है और श्रम आदि करने वाला शूद्र रूप में पैर हैं।' इसमें श्रेष्ठता का क्रम देखना वेद विरुद्ध भावना का प्रदर्शन है, क्योंकि शरीर के चारों भाग समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। शूद्र को पैरों का अलंकारी रूप देखकर उसे हेय दृष्टि से देखने का वेदों में कोई प्रमाण नहीं है, और न ही पैर मानव के शरीर के हेय दृष्टि से देखने योग अंग है। जिस प्रकार शरीर के पूर्ण स्वास्थ्य के लिए शरीर के इन चारों अंगों का समान महत्व है, उसी प्रकार समाज की सुख समृद्धि के लिए चारों वर्णों का बराबर योगदान है।

समाज रूपी शरीर की सर्वांगीण उन्नति के लिए उत्तम शिक्षा, ज्ञान विज्ञान की उन्नति एवं तकनीकी विकास करने वाले विद्वानों की भी आवश्यकता है, राष्ट्र की रक्षा व न्यायपूर्वक प्रशासन करने वाले संयमी मानसिक एवं शारीरिक दृढ़ता वाले वीर पुरुषों की भी आवश्यकता है। उद्योग धंधों व व्यापार करने वाले उद्यमियों व व्यापारियों की भी आवश्यकता है और उपरोक्त तीनों प्रकार के कार्यों को भली-भांति संपन्न कराने के लिए कुशल, अर्द्धकुशल श्रमिकों की भी आवश्यकता है।

वेदों के अनुसार कुशल व अर्द्धकुशल श्रमिक शूद्रों (सेवकों) के वर्ग में आते हैं, लेकिन इन वर्ग विभाजन में शूद्रों की स्थिति को गरिमाविहीन कहा है। यदि हम उपरोक्त अलंकार में समाज को केंद्र में न रखकर ब्रह्मा को केंद्र में रखे और शूद्र की उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से मान लें तो भी शूद्र उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकेगा।

यजुर्वेद के अनुसार शूद्र तपस्या का प्रतीक है

तपसे शूद्रम्।

(यजु. 30-5)

जैसे पैर के बिना शरीर स्थिर नहीं रह सकता, उसी प्रकार श्रम के बिना ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य का कोई प्रयास सफल नहीं हो सकता। शूद्र श्रम द्वारा तीनों वर्णों के कार्यों को संपन्न कराने में एक महत्वपूर्ण सहयोगी की भूमिका का निर्वहन करता है, अतः शूद्र को शेष तीनों वर्णों का पूरक

कहा गया है। आदि शंकराचार्य ने वृहदा. उपनिषद (3-1-4-13) की व्याख्या में शूद्र को सबका पोषण करने वाला पूषण या पृथ्वी देवता कहा है। जैसे पृथ्वी सब प्राणियों का आधार है वैसे ही शूद्र सब वर्णों का आधार है। वेदों की दृष्टि में कोई भी व्यक्ति या वर्ण कम या अधिक सम्मानित नहीं है, बल्कि सब बराबर हैं

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

(ऋण. 5-60-5)

अर्थात्मनुष्यों में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। ये सब बराबर के भाई हैं। वे सब मिलकर लौकिक और पारलौकिक उत्तम ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न करें।

वेदों में शूद्र कहीं भी हेय या निम्न श्रेणी का नहीं माना गया है। उसे भी वेद पढ़ने और यज्ञ करने का अधिकार दिया है

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।

(यजु. 26-2)

अर्थात्जैसे ईश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, सेवक और उत्तम अन्त्यज आदि मनुष्यों को वेदवाणी का उपदेश करता है, वैसे ही सब मनुष्य अच्छे प्रकार से इसका उपदेश करें। इसमें किसी का अनाधिकार नहीं है।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश समु. तृतीय में इसका भाष्य इस प्रकार किया है

परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्यों के लिए इस कल्याणकारी अर्थात् सांसारिक और मुक्ति का सुख देने वाली चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूं वैसे तुम भी किया करो। हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, भृत्य व स्त्री आदि और अति शूद्र आदि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है।

सभी व्यक्तियों को वेद पढ़ने का अधिकार होने और यज्ञ आदि वैदिक क्रियाएं करने का अधिकार होने से निरुक्त का भी प्रमाण है

यज्ञियासः पंचजनाः मम होत्रं जुषहवम्॥

(ऋग् 10-53-4)

इस मंत्र में पंचजनाः की व्याख्या करते हुए यास्क ऋषि स्पष्ट करते हैं कि गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस ये पांच प्रकार के व्यक्ति हैं। इन सबको यज्ञ करने का अधिकार है।

औपमन्यव का मत है कि पंचजनाः से तात्पर्य, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद से है। अतः इन पांचों को यज्ञ करने का अधिकार है।

इन उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेद की दृष्टि में चारों वर्ण समान हैं। वेद इनमें से किसी विशेष वर्ण को कम या अधिक महत्व नहीं देता है। जैसा कि वैदिक ग्रन्थों पर प्रायः आक्षेप लगाया जाता है कि वे शूद्र विरोधी और द्विज समर्थक हैं, इन प्रमाणों से उन आक्षेपों का निर्मूलन हो जाता है।

जैसा कि इस अध्याय में दिए गए प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि मनु अपने चिंतन का आधार वेदों को मानता है और उनकी मान्यताओं को ही मनुस्मृति में स्थान देता है तो मनु की दृष्टि में शूद्र गरिमा विहीन नहीं है। क्योंकि वेद उन्हें भी अन्य वर्णों की भांति गरिमामय मानता है और वेदों की दृष्टि ही मनु की दृष्टि है।

मनुस्मृति में प्रविष्ट कराए गए प्रक्षेपों ने ही मनु को शूद्र विरोधी सिद्ध किया है, अन्यथा मनुस्मृति के अन्य अनेकों श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि मनु के मन में शूद्रों के प्रति वही सम्मान है जो द्विजों के प्रति है। मनुस्मृति के निम्न श्लोक इस स्थापना की पुष्टि करने में सक्षम हैं

यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः।
तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः॥

(10-127)

अर्थात्दूसरों की निंदा करने वाला शूद्र जैसे-जैसे श्रेष्ठ आचरण करता जाता है वैसे-वैसे प्रशंसित होकर इस लोक व स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठितः।
मन्त्रवर्ज्य न दुष्यन्ति प्रशंसा प्राप्नुवन्ति च॥

(10-127)

अर्थात्धर्म कार्य करने के इच्छुक, धर्म को जानने वाले श्रेष्ठों के आचरण का पालन करने वाले शूद्र मंत्र रहित यज्ञ आदि धर्म कार्य करने पर पतित नहीं होते अपितु प्रशंसा को प्राप्त होते हैं।

मनु की दृष्टि से शूद्र न तो घृणित हैं और न उपेक्षित। समाज की सुख-समृद्धि के लिए शूद्रों की उपयोगिता अन्य वर्णों से कम नहीं है

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।
सुख बाहुरूपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयात्॥

(1-87)

अर्थात्समस्त संसार की सुरक्षा, व्यवस्था एवं समृद्धि के लिए महातेजस्वी परमात्मा ने मुख, बाहु, जंघा और पैरों की तुलना में निर्मित्तों के अर्थात् क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के पृथक-पृथक कर्म बनाए।

मनु ने शूद्र को कर्म से माना है जन्म से नहीं। शेष वर्णों को भी कर्म से ही माना है। मनु का यह विभाजन शिक्षा शास्त्र पर आधारित है। शिक्षा शास्त्र शिक्षार्थियों का वर्गीकरण उनके इंटेलिजेंट कोसैंट के आधार पर करता है। यह इंटेलिजैंट कोसैंट प्रकृति या परमात्मा प्रदत्त है यह शिक्षा द्वारा एक सीमा तक ही बढ़ाया जा सकता है। यइ इंटेलिजेंट कोसैंट अंकों में होता है और इसका परास शून्य से सौ तक होता है आधुनिक शिक्षा शास्त्र भी इसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से करता है

025	मंद बुद्धि शिक्षार्थी
2550	सामान्य बुद्धि का शिक्षार्थी
5075	तीव्र बुद्धि का शिक्षार्थी
75100	विलक्षण प्रतिभा का शिक्षार्थी

इंटेलिजैंट कोसैंट के आधार पर वर्ण विभाजन इस प्रकार होता है

75100	ब्राह्मण
5075	क्षत्रिय
2550	वैश्य
025	शूद्र

शून्य से पच्चीस वाले वर्ग का शिक्षार्थी मंद बुद्धि होता है। उसे पढ़ने से भी विद्या नहीं आ पाती है। ऐसे व्यक्ति के लिए यदि मनु के स्थान पर अन्य कोई कर्म-विधान कर्त्ता होता तो वह उसके लिए किन कर्मों की संस्तुति करता? शायद उसके पास मनु से अच्छा कोई विकल्प न होता। मनु का विधान निम्नलिखित है

एक मेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥

(1-91)

अर्थात्परमेश्वर ने जो विद्याहीन-जिसे पढ़ने से भी विद्या न आ सके, शरीर से पुष्ट, सेवा में कुशल हो, उस शूद्र के लिए इन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्य तीनों वर्णों की निंदा से रहित प्रीति से सेवा करना, यही एक कर्म करने की आज्ञा दी है।

मनु आयु के आधार पर व्यक्ति के वरिष्ठता क्रम को निर्धारित करने के पक्ष में है। यदि कोई शूद्र नब्बे वर्ष से अधिक आयु वाला हो तो वह सबके लिए सम्मानित होगा

पंचानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च।
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हं शूद्रोऽपि दशमीं गतः॥

(2-137)

अर्थात्तीन वर्णों में अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य में अधिक गुण जिसमें हों वह कम गुण वालों के द्वारा सम्मान करने योग्य है तथा नब्बे वर्ष से अधिक आयु वाला शूद्र भी सबके द्वारा सम्मान देने योग्य है।

शूद्र आर्य थे। भले ही वे कर्म विभाजन से समाज के चौथे पायदान पर थे, लेकिन वे दास नहीं थे और न ही मनु दास प्रथा के समर्थक थे। शूद्रों को भी श्रम को बदले पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार था। शूद्र

से काम लेकर पारिश्रमिक न देना मनु व्यवस्था के विरुद्ध है

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च।
प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं स्थानं कर्मानुरूपतः॥

(7-125)

अर्थात्राजा राजकार्यों में नियुक्त राजपुरुषों, स्त्रियों और सेवक वर्ग (शूद्र वर्ग) को पद और काम के अनुसार प्रतिदिन की कर्मस्थान और जीविका निश्चित कर दे।

मनु के लिए शूद्र एक ऐसा व्यक्ति था, जो किसी कारणवश कोई विद्या न सीख सका था उसमें विद्या सीखने की योग्यता का अभाव रहा है। वह बिना किसी कौशल के अवश्य ही कर्म विभाजन में पिछड़ा है और शूद्र के वर्ग का अंश बना है, लेकिन मनु ने उसके प्रति कोई उपेक्षा भाव नहीं दिखाया है, बल्कि उसके अनुभवों से लाभ उठाने के लिए शेष तीनों वर्गों को आदेशित किया है

यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचितत्समाचरेत्।
तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वाऽस्य रमेन्मनः॥ *(2-198)*

अर्थात्यदि स्त्री अथवा शूद्र कोई श्रेष्ठ कार्य करे तो उनसे शिक्षा लेकर उन पर आचरण करे अथवा जिस शास्त्रोक्त कर्म में मन रमे उस श्रेष्ठ कार्य को करता रहे।

श्रद्धानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुएकुलादपि॥

(2-213)

अर्थात्उत्तम विद्या प्राप्ति की श्रद्धा करता हुआ पुरुष अपने से न्यून से भी विद्या ग्रहण करे। नीच जाति से भी उत्तम धर्मग्रहण करे और निंद्यकुल से भी स्त्रियों में से उत्तम स्त्री का ग्रहण करे यह नीति है।

मनु और वेद

वेदों को सर्वाधिक प्रामाणिक तथा स्वतः प्रमाण मानने की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। आदि काल के ऋषि और फिर कालांतर में सभी आचार्यों, दार्शनिकों, संप्रदाय प्रवर्तकों तथा धर्मोपदेशकों ने इन्हें अपने-अपने मतों का आधार बनाया है।

वैदिक साहित्य के अंतर्गत संहिताओं से भिन्न, ब्राह्मण, अरण्यक तथा उपनिषद संज्ञक ग्रंथों की परिगणना होती है, परंतु वेदाधारित मनुष्यों के कर्त्तव्य-निर्धारण, उनकी सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक आदि व्यवस्थाओं की विस्तृत चर्चा जिन ग्रंथों में हुई है वे स्मृति ग्रंथ कहलाते हैं। शास्त्र प्रमाण विचार से वेदों के बाद स्मृतियों को ही प्रमाण माना जाता है। स्मृतियों में वर्णित मानवीय कर्तव्यों और आचरणों को स्मार्त धर्म तथा स्मार्त कर्म कहा जाता है, परंतु स्मृतियों में वर्णित कर्तव्य तथा अन्य व्यवस्थाएं उसी स्थिति में स्वीकार्य मानी जाती हैं यदि उन्हें वेदों का समर्थन प्राप्त है अर्थात् स्मृतियों का वेदानुमोदित होना अनिवार्य माना गया है। यदि किसी स्मृति में वेद विरुद्ध कोई मत है तो उसे अप्रमाणित या प्रक्षिप्त माना जाता है।

मनु ने कहा है

अर्थकामेष्वसक्तानां.....प्रमाणं परमं श्रुतिः। *(2-13)*

अर्थात्जो पुरुष अर्थसुवर्णादि रत्न और कामस्त्री सेवनादि में नहीं फंसते हैं, उन्हीं को धर्म का ज्ञान होता है, जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें, क्योंकि धर्म-अधर्म का निश्चिय बिना

वेद के ठीक-ठीक नहीं होता। इस उपरोक्त श्लोक का भाष्य करते हुए मनुस्मृति के प्रसिद्ध भाष्यकार कुल्लुकभट्ट ने कहा है कि धर्म को जाननेवालों के लिए तो श्रेष्ठ प्रमाण वेद ही है। जहां श्रुति और स्मृति में विरोध प्रतीत हो वहां स्मृति के अर्थ को स्वीकार नहीं किया जा सकता। श्रुति के विरुद्ध हो जाने पर स्मृति की मान्यता अप्रामाणिक तथा अनादरणीय हो जाती है।

स्मृतियों की संख्या 28 हैं, परंतु मनु द्वारा रचित मनुस्मृति प्रामाणिक है और समाज में आदरणीय भी। आर्यमतावलम्बी इसे ही स्वीकार करते हैं, क्योंकि इसमें वेदोक्त मान्यताओं को ही व्यवस्थाओं का आधार बनाया गया है। स्वामी दयानंद ने मनुस्मृति को ही मान्यता प्रदान की है और अन्य स्मृतियों को वेदानुकूल न होने के कारण स्वीकार नहीं किया है।

सतीप्रथा के संबंध में सतीप्रथा को शास्त्र विरुद्ध सिद्ध करने के लिए प्रसिद्ध समाज सुधारक राममोहन राय ने स्पष्ट किया था कि अंगिरा तथा उसी की श्रेणी के अन्य अवान्तर कालीन स्मृतिकारों द्वारा बताए गए नियम या सामाजिक व्यवस्थाएं स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि वे मनु की आज्ञाओं के प्रतिकूल हैं। जैसा कि ब्राह्मण ग्रंथ कहते हैं कि 'जो कुछ मनु ने कहा है वह औषधि के समान है।' बृहस्पति ऋषि भी यही कहते हैं कि मनुस्मृति की व्यवस्थाओं के विपरीत अन्य स्मृतियों की व्यवस्थाएं स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि समस्त मनुस्मृतियों में मनुस्मृति ही वेदाधारित है।

राममोहन राय ने सतीप्रथा को इसलिए अमान्य कर दिया था कि वह मनुस्मृति द्वारा समर्थित नहीं है। उनकी मान्यता इसी तर्क पर आधारित थी कि मनुस्मृति की व्यवस्थाएं वेदों पर आधारित हैं और वेद ही धर्म का मूल है। ईस्ट इंडिया कंपनी के सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश संस्कृतविद् सर विलियम जोंस ने भी मनुस्मृति की प्रशंसा की थी। उन्होंने अपने भाष्य के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में कहा था कि इस ग्रंथ में गंभीर श्रद्धा के भाव हैं, मानवता के प्रति उदार भाव हैं, सभी प्राणधारियों के प्रति सौम्यतायुक्त संवेदनशीलता है और इसमें सम्राटों के गलत कार्यों के लिए भर्त्सना के विचार आए हैं। ये सभी विषय निश्चय ही श्रेष्ठ हैं।

हम मनुस्मृति में वर्णित मनु के विचारों के आधार पर कह सकते हैं कि वेदों के प्रति जितना श्रद्धाभाव मनु ने प्रकट किया है उतना प्राचीन

एवं अर्वाचीन किसी शास्त्रकार ने शायद ही किया हो। मनु के वेद विषयक विचार केवल वेदों के प्रति श्रद्धा के कारण नहीं थे, बल्कि वे वेदों को अपौरुषेय मानते थे और उनमें वर्णित व्यवस्थाओं को ईश्वर द्वारा मानव के लिए प्रदत्त ज्ञान के रूप में स्वीकार करते थे, इसीलिए उन्होंने मनुस्मृति में वेदों के ज्ञान को प्रकाशित किया है।'

मनु की मान्यता है कि चारों वर्ण, तीनों लोक, चार आश्रम और जो कुछ भूत, वर्तमान और भविष्य की विद्याएं हैं वे सब वेदों से प्रकाशित होती है

चातुर्वर्ण्यं.....वेदात् प्रसिद्धयति। *(12-97)*

इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुणों की उत्पत्ति भी वेदों से ही हुई है

शब्दः स्पर्शश्च .....प्रसूतिगुणकर्मतः। *(12-98)*

मनु कहते हैं कि इतना ही नहीं, सेनापत्वि, राज्य संचालन, दण्ड नीति तथा सर्वलोकों को अनुशासित करने के तरीके भी वेदों का ज्ञाता ही जानता है

सेनापत्यं च राज्यं.....वेदशास्त्रविदर्हति। *(12-100)*

वेदों के प्रति अपने पूर्ण समर्पण को दर्शाते हुए वे कहते हैं कि वेदज्ञ पुरुष अपने कर्मज दोषों को भी जला देता है जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि गीले वृक्षों को जला देती है

यथा जातवलो.....कर्मजं दोषमात्मनः। *(12-101)*

वेदशास्यविद किसी भी आश्रम में रहता हुआ इस वर्तमान जन्म से ही मोक्ष लाभ प्राप्त करता है

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो.....ब्रह्मभूयाय कल्पते। *(12-10)*

मनु ब्राह्मण के लिए वेद का अभ्यास विशिष्ट कार्य मानते हैं। अन्य कर्तव्य कर्मों को करता हुआ भी ब्राह्मण यदि वेद का अभ्यास नहीं करता तो वह इस पद (ब्राह्मण वर्ण) का अधिकारी नहीं होता

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य.....विशिष्टानि स्वकर्मसु। *(10-80)*

मनु के अनुसार शिष्ट ब्राह्मण वे हैं जो धर्म को धारण करते हुए सांगों-पांग वेदों का अध्ययन करते हैं। ऐसे वेदज्ञ ब्राह्मण ही श्रुति तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से धर्म का निश्चय करने में समर्थ होते हैं

धर्मेणधिगतो यैस्तु.....श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः। *(10-109)*

जहां मनु मनुष्यों के लिए ग्राह्य सात्विक गुणों का उल्लेख करते हैं वहां उन्होंने वेद के अभ्यास को सब गुणों का प्रधान लक्षण माना है। तप, ज्ञान, शोच, इन्द्रिय-निग्रह, धर्मानुष्ठान तथा अध्यात्म चिंतन अन्य सात्विक गुण है

वेदाभ्यासतेपा ज्ञानं.....सात्विकं गुणलक्षणम। *(12-31)*

मनु अन्य किसी धार्मिक अनुष्ठान की तुलना में वेदाभ्यास को ही महत्व देते हैं। मनु की मान्यता है कि वेदों से ही धर्म की उत्पत्ति हुई है, अतः वेदाभ्यास से ही धर्म को आत्मसात किया जा सकता है। वेदों की आज्ञाओं का ज्ञान वेदाभ्यास से ही तो संभव है। मनुस्मृति के 12वें अध्याय में जहां निःश्रेयस (मोक्ष) प्राप्त करने के साधनों का वर्णन है वहां भी वेदाभ्यास को ही प्राथमिकता दी गई है। मनु की मान्यता थी कि वेदों के बाहर कहीं भी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक या अध्यात्मिक ज्ञान नहीं है, फिर मोक्ष को प्राप्त करने का ज्ञान भी वेदों के बाहर नहीं होगा और वेदाभ्यास से अधिक सुलभ और सुगम पथ भी कही नहीं होगा, अतः उन्होंने वेदाभ्यास पर ही बल दिया है

तप ज्ञान इन्द्रिय संयम.....विश्रेयस्करं परम्। *(12-83)*

मनु वेदों को धर्म का पर्याय ही मानते हैं, अतः धर्मशास्त्र मनुस्मृति में वेदों की मान्यताओं को ही स्थान दिया है। मनु का यह आश्वासन है कि जो कुछ उनकी स्मृति में उल्लिखित हुआ है वह सब वेदोक्त ही है, अतः उसके आधार पर बनी यह मनुस्मृति वेदानुकूल ही है

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो.....सर्वज्ञानमयो हिसः। *(27)*

मनु केवल आस्था के बल पर किसी के अंधकूप में यह कहकर नहीं धकेलते कि वहां अखंड-ज्योति का प्रकाश है। वे यह भी नहीं कहते कि तुम्हें इसलिए इस शास्त्र का अनुकरण करना है कि यह ईश्वर द्वारा रचित

है। वे चाहते हैं कि प्रत्येक श्रद्धालु अपने मन-मस्तिष्क के सब वातायन खोल डाले और तब निर्णय करे कि सत्य क्या है और असत्य क्या है? यदि वह इस सत्य पर स्थिर हो जाए कि वेदों में ईश्वरीय प्रकाश है तब वह श्रुति में अपना पथ खोजे।

मनु मनुस्मृति में कहते हैं कि विद्वान को चाहिए कि वह ज्ञानचक्षुओं से सब शास्त्रों का सम्यक् अवलोकन करे और तब श्रुति से प्रामाणिक स्वधर्म में स्वयं को लगाए

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलम् ज्ञानचक्षुषा।
श्रुति प्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै॥ *(2 - 8)*

मनु कहता है कि वेदों के अध्ययन से श्रद्धालु के सभी मानसिक विभ्रम दूर हो जाते हैं और उसका मन अखंड ज्ञान के आलोक से आलोकित हो जाता है। इस दिव्य आलोक से उत्पन्न उसका आभामंडल उसके यश को सभी दिशाओं में फैला देता है और उसे उसके अंतिम लक्ष्य तक पहुंचा देता है।

हम वेदोक्त धर्म का पालन क्यों करें? इसके उत्तर में मनु कहता है कि ऐसा करके हमें इस लोक में यश मिलता है और परलोक में मोक्ष लाभ होता है

क्षुति स्मृत्युदितं.....प्रेत्यचानुत्तमं सुखम्। *(2-9)*

मनु वेदों के प्रति इतने आस्थावान थे कि वेद विरुद्ध आचरण करने वालों को नास्तिक ही मानने लगते थे। वे मनुस्मृति के श्लोक में अपनी इस भावना का प्रदर्शन करते हैं'वेदों में आस्था, रखने वाले लोग मात्र तर्क का सहारा लेकर जब वेदों की अवज्ञा और अह्वेलना करते हैं तो ऐसे लोगों को नास्तिक कहना उचित ही है। यहां तक कि सज्जन पुरुषों के समाज में यह रहने योग्य भी नहीं है

यो अवमन्येत्.....नास्तिको वेदनिन्दकः *(2-19)*

कुछ अपात्र भाष्यकारों ने वेदों के भाष्यों में हिंसा और वर्ग भेद की भ्रामक अवधारणाओं को जन्म दे डाला था। यज्ञ में पशुबलि जैसी हिंसा वेदों का विषय बन चुकी थी। वेदों के इस विकृत स्वरूप से आहत होकर

महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी ने वेदों को अप्रामाणिक ग्रंथों की सूची में रख छोड़ा था। चार्वाक अपने सिद्धांत के अंतर्गत वेदों जैसे धार्मिक ग्रंथों को अनावश्यक मानते ही थे। अतः ऐसे लोगों के प्रति वैदिकों की नकारात्मक प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही थी। वैदिक इन्हें नास्तिक ही कहते थे।

अगले श्लोक में मनु कहते हैं कि चतुर्विध धर्म लक्षणों में वेदों का स्थान प्रथम है। स्मृति, सदाचार तथा स्वयं ही आत्मा को प्रिय, धर्म के लक्षण वेदों के बाद ही गिनाए जाते हैं

वेद : स्मृतिः सदाचारः स्वस्थ च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विध प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्॥ *(2-12)*

वेदों के प्रति महर्षि मनु की असीम श्रद्धा का पता हमें, तब लगता है जब हम देखते हैं कि वे मनुष्य की महत्ता न तो आयु, न केशों के पकने, न धनाढय होने और न बंधु-बान्धवों की अधिकता से मानते हैं, बल्कि उनकी दृष्टि में जो वेदज्ञ है वही महान है। उनकी महानता मापने का केवल यही एक मापदंड है। इस मापदंड से यदि कोई शूद्र पात्र बन जाता है तो वह महान है और ब्राह्मणकुल में जन्म लेने वाला यदि कोई ब्राह्मण इस मापदंड से स्वयं को पात्र सिद्ध नहीं कर पाता तो वह महान नहीं है

न हायनैर्न पालतैर्न वित्तेन न बंधुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मयोऽनुचानः स नो महान्॥ *(2-54)*

मनु कहते हैंजो मनुष्य अर्थ तथा काम में आसक्त नहीं है वस्तुतः उसे ही ज्ञान होता है और यथार्थ धर्म के जिज्ञासुओं के लिए तो वेद ही परमप्रमाण है।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने मनु को वेदों के प्रति आस्थावान समझकर ही उसके द्वारा रचित मनुस्मृति को अपने ग्रंथों में सम्मानित स्थान दिया है। अपने मन्तव्यों को मनुस्मृति द्वारा समर्थित मानकर ही वे आश्वस्त हो जाते थे कि उन्होंने जो स्थापना की है वह वेदों से प्रमाणित है।

भारत की आदि संस्कृति वैदिक संस्कृति ही थी। आर्य बाहर से आए या फिर उनका उद्‌भव भारतीय भूमि में ही हुआ इससे यह कथन प्रभावित

नहीं होता कि भारत की आदि संस्कृति वैदिक संस्कृति ही थी, क्योंकि यदि आर्य बाहर से आए थे तो इस भारत-भूमि पर वे आदिवासी जातियां विचरण करती होंगी, जिनके पास न उनका कोई साहित्य रहा होगा और न कोई साहित्यकार, अतः यह कहा जा सकता है कि उनकी कोई सुपरिभाषित संस्कृति नहीं रही होगी। लेकिन आर्यों के पास अपनी संस्कृति होगी, अपनी कोई विचारधारा होगी और इस विचारधारा को आकार देने के लिए साहित्यकार अथवा दार्शनिक पृष्ठभूमि के चिंतक रहे होंगे। उनके भारत में आने के साथ ही वैदिक संस्कृति यहां की मूल संस्कृति के रूप में विकसित होनी शुरू हो गई होगी और यदि आर्यों का उद्‌भव भारत में हुआ हो तो भारत की आदि संस्कृति वैदिक होगी ही।

एक ऋषि के रूप में मनु का संदर्भ वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में भी आया है तो निश्चय ही वे वैदिक ऋषि रहे होंगे, अतः वेदों के प्रति उनकी श्रद्धा स्वभावगत ही मानी जाएगी। एक वैदिक ऋषि अपनी रचनाओं में उन्हीं स्थापनों को स्थान देगा जो वेदों द्वारा मान्य होंगी, अतः मनु की वेदों के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी और उनकी मनुस्मृति में वेद विरुद्ध स्थापनाओं के लिए कोई स्थान नहीं होगा।

मनुस्मृति में वर्णित उपरोक्त श्लोकों के अतिरिक्त भी और अनेक श्लोक हैं, जो मनु को वेदों के प्रति आस्थावान सिद्ध करने में सक्षम हैं। मनु स्वयं भी वेदाध्ययन करते थे और ब्राह्मणों को भी वेदाध्ययन के लिए सचेत करते रहते थे। अनेकों श्लोकों में उन्होंने ब्राह्मणों से कहा हैस्वयं को द्विजों में श्रेष्ठ मानने वाले के लिए उचित है कि वह तपश्चर्यापूर्वक वेदों का ही अभ्यास करें।

श्लोक (2-168) में महर्षि मनु ने कहा हैजो स्वयं को द्विज तो कहता है, लेकिन वेदों को छोड़कर अन्य शास्त्रों में ही श्रम करता है, वह अपने पुत्र, पौत्रादि सहित शूद्रत्व को प्राप्त होता है

यो अनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
सः जीवन्नेम शूद्रत्वम् आशु गच्छति सान्वयः॥

मनु कहते हैं कि वेद एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें विश्व की समस्त सत्य

विद्याएं समाविष्ट है। वेद से बाहर किसी भी प्रकार के ज्ञान की कल्पना मनु कर ही नहीं सकते थे। वे उन आचार्यों को भी श्रद्धाभाव से देखते थे, जो अपने शिष्यों को वेद का ज्ञान कराते थे।

मनु के अनुसार

वेद प्रदानादाचार्यं पितरं परिच्छते॥

अर्थात्आचार्य को 'पिता' संज्ञा भी इसीलिए प्राप्त होती है, क्योंकि वह अपने शिष्य को वेद का ज्ञान प्राप्त कराता है।

श्लोक (2-183) में मनु कहते हैं कि उपनयन पूर्वक जब ब्रह्माचारी वेदाध्ययन आरंभ करता है तो उसे आश्रमवासी होकर जीवनयापन करना होता है। भोजनार्थ जब वह भिक्षा लेने जाए तो यह ध्यान रखना चाहिए कि भिक्षा वह उन्हीं घरों से प्राप्त करे जो वेदों का पठन करते हैं, यज्ञ करते हैं तथा जिनके कर्म प्रशंसनीय हैं। वेदाभ्यासहीन गृहस्थ की भिक्षा स्वीकार करना भी उचित नहीं है

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु।
ब्रह्मचर्याहरेद् भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्॥

मनु स्वयं वेदों के महत्व को जानते थे। वेदों की आज्ञाओं पर चलते भी थे और वेदों से मनुस्मृति की विषय सामग्री का चयन भी किया था, लेकिन वे इतने से संतुष्ट नहीं थे। उनकी आकांक्षा थी कि समाज की प्रत्येक इकाई वेदों का अध्ययन करे। छात्रों को वे विशेष रूप से आज्ञा देते थे कि वे वेद का अध्ययन अवश्य करें और उसके अनुसार अपनी जीवन रेखा निश्चित कर लें।

श्लोक (3-2) में वे विद्यार्थियों से आशा करते हैं कि वे सुविधानुसार चारों वेदों, तीन, दो अथवा एक ही वेद को पढ़ें, लेकिन उनका यह अध्ययन यथाक्रम होना चाहिए, जिसमें वेदाध्ययन के सहायक सभी ग्रंथों तथा विद्याओं का अध्ययन अपेक्षित होता है। इस प्रकार से इस ब्रह्मचर्यकाल को समाप्त करके वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश की इच्छा करे

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथा क्रमम्।

अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥ *(3-2)*

श्लोक (5-4) में मनु का कथन है कि विद्वान भी मृत्यु का ग्रास बन जाता है, शरीर की दृष्टि से न सही उसकी चारित्रिक मौत तो हो ही जाती है। किंतु यह दिन तब आता है जब उससे वेदों का अभ्यास घट जाता है और वह द्विजोचित आचार का त्याग कर देता है। आलसी और प्रमादी बन जाता है तथा दूषित अन्न का सेवन करने लगता है।

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रांजिघांसति॥ *(5-4)*

मनु की मान्यता है कि मानवीय जीवन से संबंधित कोई सिद्धांत तब तक निरर्थक ही है जब तक कि उसे जीवन में न ढाल लिया जाए। वे वेदाध्ययन अथवा वेदाभ्यास को तब तक सार्थक नहीं मानते जब तक कि उनके आधार पर वेदोक्त आचरण नहीं हो जाता, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि वे वेदाभ्यास को महत्वहीन मानते हैं। वे वेदाभ्यास को धर्म का पालन करने में प्रथम पायदान मानते हैं। मनु का तो यहां तक मत है कि जो व्यक्ति वेदाध्ययन से स्वयं को पृथक रखकर मोक्ष लाभ की इच्छा करता है वह तो अधोगामी ही होता है। मनुस्मृति के निम्न श्लोकों से मनु की यही भावना व्यक्त होती है

अनधीत्य द्विजोवेदाननुत्पाद्य तथा मुतान।
अनिष्टवा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः॥ *(6-37)*

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्॥ *(4-14)*

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते॥ *(4-147)*

मनु ने वेदों को इतना महत्त्व दिया है कि राजा के लिए उसी सभा को श्रेष्ठ माना है जिसमें वेदों के ज्ञाता तीन ब्राह्मण अवश्य हों (8-11) उनके अनुसार अनेक अज्ञानियों की तुलना में वेद के ज्ञाता एक विद्वान का सभा

में होना अधिक अच्छा है, क्योंकि वेदों का पंडित जैसी धर्म की व्याख्या करेगा वैसी वेद ज्ञान रहित करोड़ों व्यक्तियों द्वारा भी संभव नहीं है (12-113) मनु की दृष्टि में धर्म का वास्तविक ज्ञान वही कर सकता है, जो आर्ष धर्मोपदेश तथा वेदशास्त्र के अविरोधी तर्क द्वारा धर्म का अनुसंधान करता है (12-106)।

मनुस्मृति के अनेकों स्थानों पर वेद की प्रमाणिकता को स्वीकार ही नहीं किया गया है, अपित उसे प्रतिष्ठापित भी किया गया है। यही कारण है कि वर्तमान युग में वेदों के महत्त्व को समाज के लिए प्रतिपादित करने वाले महर्षि दयानंद ने मानव जीवन से सम्बन्धित सभी विभागों जैसे लोकव्यवहार, शिक्षा गृार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास, राजनीति, अध्यात्म प्रवचन, शास्त्रार्थ आदि में मनुस्मृति को आधार बनाया है।

मनु ने मोक्ष के साधन रूप वेदाभ्यास, तपस्या, ज्ञान, इन्द्रिय-संयम, अहिंसा, गुरुसेवाये छः कर्म बताए हैं, परंतु इनमें भी वेद का सर्वाधिक महत्त्व मानते हुए इन छः में से वेदाभ्यास को परम कल्याणकारी बताया है

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयस्करं परम्॥ *(12-83)*

मनु चारों आश्रमों में वेद-विधान के अनुसार गुजरने पर ही बल देते हैं। मनु उन्हीं ब्रह्मचारियों को गृहस्थाश्रम में प्रवेश की अनुमति देते हैं, जिन्होंने कम से कम एक वेद का अध्ययन कर लिया हो और उसके ज्ञान को अपने जीवन में उतार लिया हो। गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट व्यक्तियों को भी मनु वेद के विधि-विधानों के अनुसार अपना जीवन निश्चित करने की संस्तुति करते हैं। इसी विधि-विधान के अंतर्गत वे गृहस्थियों को निर्धारित समय में यज्ञ करने के प्रति प्रेरित करते हैं। वे चाहते हैं कि जब गृहस्थियों को यज्ञ करना होगा उन्हें वेदों के विद्वान को ही होता (यज्ञ संपन्न करने वाला) बनना चाहिए, क्योंकि जो पुरोहित वेद-विरुद्ध विधि से यज्ञ करते हैं वे और जिनके लिए यज्ञ करते हैं दोनों ही उस वेद-विरुद्ध विधि यज्ञ से नरक में जा पड़ते हैं।

गृहस्थ के कर्त्तव्यों में भी मनु ने वेदाभ्यास को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। वे कहते हैं कि गृहस्थी को उन सभी व्यवहारों तथा पदार्थों को छोड़

देना चाहिए जो वेद-स्वाध्यायविरोधी हों। वेद ज्ञानी ही समाज में आदर का पात्र हैं, इसलिए मनु का गृहस्थियों के लिए निर्देश है कि वे वेद विद्या के विद्वानों का भोजन वस्त्र आदि से सत्कार करें। वेद की निंदा करने वाले को मनु ने नास्तिक घोषित किया है। गृहस्थियों को भी उन्होंने निर्देश दिया है कि वह वेद की निंदा न करें और इस प्रकार नास्तिकता का परिहार करें।

मनु ने वानप्रस्थ आश्रम में भी वेदाभ्यास पर बल दिया है। उनके अनुसार वानप्रस्थी को निरंतर वेद-स्वाध्याय में प्रवृत्त रहना चाहिए। उसे सहनशील, मित्रभाव से युक्त, मन को वश में रखने वाला दानशील और प्राणियों पर दया करनेवाला होना चाहिए

स्वाध्याय नित्युक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः॥ *(6-8)*

अंतिम आश्रम अर्थात् संन्यास आश्रम का अधिकारी मनु ने उसी को बताया है, जिसने विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन किया हो, गृहस्थ धर्म का पालन किया हो और अपने सामर्थ्य के अनुसार यज्ञों का अनुष्ठान किया हो। जो इन योग्यताओं के बिना संन्यास लेकर मोक्ष की इच्छा करता है वह पतित हो जाता है, क्योंकि वेदज्ञान के बिना स्वतंत्र आचरण करके वह चरित्रभ्रष्ट हो जाता है।

इस प्रकार चारों आश्रमों के आचरण में मनु ने बार-बार वेद के महत्व और उसके अध्ययन-अनुसरण पर बल दिया है। वर्णों में, क्योंकि ब्राह्मण ही समाज का मुख्य मार्गदर्शक होता है, इसलिए उसके लिए वेदाभ्यास तथा अनुसरण पर विशेष बल दिया गया है। विशेष नियमों के अनुसार व्यवहार करने वाला, वेद-शास्त्र का ज्ञाता ब्राह्मण पापरहित होकर परमेश्वर में मग्न होकर आनंदित रहता है

अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेदशास्त्रविद्।
व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते॥ *(4-260)*

मनु ने जहां ब्राह्मण को समाज में मुख्य स्थान दिया है वहां उसके ऊपर अन्य वर्णों की अपेक्षा दायित्व भी अधिक डाल दिए हैं। यदि ब्राह्मण वेद

ज्ञाता नहीं है तो वह जनता से किसी भी प्रकार की सहायता, आदर, दान पाने का अधिकारी नहीं है। यदि वह बिल्ली जैसे चुराकर खाने के स्वभाव वाला या बगुले के समान कपटी हो तो उसको धर्मज्ञ व्यक्ति पानी भी न दे

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे।
न बकव्रतिके विप्रं नावेदविदि धर्मवित् *(4-192)*

केवल ब्राह्मणों को ही नहीं क्षत्रियों को भी मनु वेदाध्ययन की संस्तुति करते हैं। मनु कहते हैं कि जिस प्रकार ब्राह्मण संपूर्ण समाज का मार्गदर्शक है, उसी प्रकार क्षत्रिय के ऊपर समस्त समाज की रक्षा का भार है। क्षत्रियों को भी मनु के अनुसार विधिपूर्वक उपनयन-संस्कार करवाकर वेदाध्ययन करके न्यायपूर्वक सब प्रजा की रक्षा करनी चाहिए

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥

मनु. (7-2)

राजा का कार्य उत्कृष्ठ विद्वानों की सहायता से ही चलता है। मनु ने उत्कृष्ट विद्वान के रूप में वेदज्ञाता को ही सर्वोपरि मान्यता दी है। उनका कथन है कि वेदज्ञानी श्रेष्ठ ब्राह्मण एक भी जिस आचार-व्यवहार या कर्त्तव्य की व्यवस्था दे उसे ही परम धर्म समझना चाहिए। इसके विपरीत यदि दस हजार अज्ञानी भी किसी बात को कहें तो उनकी संख्या के कारण यह बात प्रमाणित नहीं हो जाती

एकोऽपि वेदविद् धर्मं यं व्यवस्येद द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परोधर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥

(12-113)

राजा को शासन व्यवस्था हेतु निर्णय लेने के लिए एक परिषद बनानी होती है। मनु के अनुसार उस परिषद में भी वैदिक विद्वानों का होना आवश्यक है।

क्योंकि वैदिक विद्वान ही यह निर्णय करने में समर्थ होते हैं कि राज्य की कौन सी नीति किस समय में सफल हो सकती है। मनु के अनुसार विधान परिषद में कम से कम दस में से तीन अर्थात् तीस प्रतिशत सदस्य वैदिक विद्वान होने चाहिए।

मनु की एक और अन्य व्यवस्था के अनुसार परिषद में तीनों वेदों के अलग-अलग तीन विद्वान और चौथा राजा द्वारा मनोनीत होना चाहिए। ऐसी सभा को ही ब्रह्मा की सभा अथवा वैदिक विद्वानों की सभा माना जाता है। वही कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने में समर्थ होती है

यस्मिन् देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः।
राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान, ब्रह्मणस्तां सभां विदुः॥

(8-11)

मनु ने मनुष्य के सात्विक होने के जो लक्षण दिए हैं, उनमें भी वेदाभ्यास प्रमुख है। मनु कहते हैं कि वेद के अध्ययन से मनुष्य में सत्वगुण के लक्षणों का विकास होता है और उसकी प्रवृत्तियां सात्विक हो जाती है। मनु के अनुसारवेद का जाप अथवा पाठ इतना गुणकारी है कि जो व्यक्ति अपनी आपराधिक प्रवृत्ति या किसी दोष के कारण समाज से बहिष्कृत हो जाए या जिसके लिए कोई अन्य प्रायश्चित न बताया गया हो वह वेदों के जाप से शुद्ध हो जाता है

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा।
होमाश्च सकला नित्यमपाङ्क्तयानां विशोधनम्॥

(11-200)

इसलिए ब्रह्मचारी के लिए मनु का विधान है कि वह वेद में निर्दिष्ट नित्य कार्मों में व्यवधान न आने दे। यदि क्रम भंग होता है या स्नातक-व्रत का लोप होता है तो अनाहार रहकर उसका कठोर प्रायश्चित करे (11-203)। मनु कहते हैं कि वेद अपने आप में महान तप है, क्योंकि परमेश्वर ने स्वयं तप के द्वारा वेद की सृष्टि की और ऋषियों ने भी वेदज्ञान तप के द्वारा प्राप्त किया

elibrary.kendriyasansthan.org

प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत् प्रभुः।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे॥

(11-243)

ब्राह्मण-ग्रंथों में अनेक स्थलों पर प्रजापति के तप द्वारा वेदों की सृष्टि का उल्लेख है। मनु कहते हैं कि तीनों वेदों के अभ्यास से मनुष्य का दुश्चरित्र आत्मशोधन के प्रभाव से नष्ट होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे मिट्टी का ढेला किसी बड़ी झील में डाल दिया जाए तो वह स्वतः ही घुलकर नष्ट हो जाता है

यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति।
तथा दुश्चरितं सर्व वेदे त्रिवृत्ति मज्जति॥

(11-263)

मनु ने वेदाभ्यास छोड़ना और वेद निन्दा को मदिरापान के समान अन्य पापों की श्रेणी में ही रखा है। वेदाभ्यास की इतनी शक्ति है कि मनुष्य जो पाप जान बूझकर नहीं करता, जो भूल-चूक से हो जाता है वेदाभ्यास से उसकी शुद्धि हो जाती है

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौट साक्ष्यं सुहृद्वधः।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानिषट्॥

(11-56)

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति।
कामतस्तुकृतं मोहात्प्रायश्चितैः प्रथग्विधैः॥

(11-46)

इस उपरोक्त विवेचन से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि मनु एक वैदिक ऋषि थे, अतः उनकी समस्त मान्यताएं वेद-आश्रित हैं। वे वेदों को संपूर्ण समाज के लिए उपयोगी मानते थे। उनकी मान्यता थी कि मानव समाज की समस्त समस्याएं जैसेआर्थिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, धार्मिक आदि वेदों के ज्ञान से शीघ्र हल हो जाती हैं। किसी समाज का

विधि-विधान बनाने में, न्याय प्रक्रिया की धाराओं-उपधाराओं के निर्माण में वेदों के महत्त्व की अनदेखी की जा सकती। मानव-जीवन के चार आश्रम, उन आश्रमों के विधि-विधान, शिक्षा का प्रारूप और मानवीय मूल्यों के स्रोत वेदों से ही तो निकले हैं। मनु ने अपनी अमर रचना मनुस्मृति की संपूर्ण विषय-वस्तु वेदों से ही विकसित की है, अतः वेदों के प्रति मनु का आस्थावान होना एक स्वाभाविक घटना थी।

elibrary.thearyasamaj.org

मनु और मांसाहार

वैदिक वाङ्मय और मनु

भारतीय वैदिक वाङ्मय का आधार वेद है। मंत्रार्थों के साक्षात् दृष्टा ऋषि-मुनियों ने वेद के मौलिक सिद्धांतों को समझकर वेदांग, ब्राह्मण, दर्शन तथा धर्मशास्त्रादि ग्रंथों की रचना की, जिससे मानव ज्ञान के प्रकाश में अपना चरम लक्ष्य प्राप्त कर सके। महर्षि मनु ने भी समस्त वर्णों व आश्रमों के मनुष्यों के कर्त्तव्यों का वर्णन एवं अन्य विधि-विधान वेदों के आधार पर अपने धर्मशास्त्र मनुस्मृति (मानवशास्त्र) से किया है। महर्षि मनु की वेदों में इतनी आस्था थी कि वे वेद के विरुद्ध बोलने वाले को नास्तिक कहकर उनके प्रति तिरस्कारपूर्ण शब्दों का प्रयोग करते थे।

धर्म के जिज्ञासुओं के लिए 'प्रमाणं परमं श्रुति' का उद्घोष करके मनु ने वेदों के प्रति अपनी पूर्ण आस्था प्रकट की है। मनुस्मृति के श्लोक (1-125) में वे कहते हैं"संपूर्ण वेद और उन वेद वेत्ताओं द्वारा प्रणीत स्मृतियां तथा उनका श्रेष्ठ स्वभाव और सत्पुरुषों का आचरण और जिस कर्म के करने में भय, शंका, लज्जा आदि न होकर आत्मा को प्रसन्नता अनुभव हों, ये धर्म के मूल हैं।

मनु (1-13) में पुनः कहते हैं"वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचरण और अपनी आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार धर्म के लक्षण हैं। श्लोक (2-166) के अनुसार ब्राह्मणादिकों में उत्तम सज्जन पुरुष सर्वकाल तपश्चर्य करता हुआ वेद का ही अभ्यास करें।''

इन उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर यह निर्विवाद पूर्वक कहा जा सकता है कि महर्षि मनु की वेद में अटूट आस्था थी अतः वह अपनी किसी भी रचना में वेद विरुद्ध अवधारणाओं को कैसे प्रकाशित कर सकता था?

वेद में न मांसाहार है, न स्त्रियों की गरिमाओं के विरुद्ध कोई ऋचा और न यज्ञ पशुबलि के रूप में किसी भी प्रकार की हिंसा, लेकिन आश्चर्य! मनुस्मृति में मांसाहार का समर्थन है और यज्ञादि के लिए पशुबलि के रूप में हिंसा का भी।

यह मनु की मानसिकता का एक पक्ष है और निश्चय ही यह पक्ष उसे वेदों की मान्यताओं से बहिष्कृत कर देता है, क्योंकि वेदों में किसी भी प्रकार की हिंसा का समर्थन नहीं है। परंतु जब हमारे समक्ष मनु के चरित्र का दूसरा पक्ष आता है तो हमें अपनी उस अवधारणा पर पुनर्विचार करना पड़ता है जो मनु को वेदों की मान्यताओं से पृथक कर रही थी। मनुस्मृति के श्लोकों में ही महर्षि मनु मांसाहार का विरोध करता है और किसी भी प्रकार की हिंसा को त्याज्य मानता है। मनु के इस परस्पर विरोधी स्वभाव के मूल में क्या है? मनुस्मृति के निम्न दो श्लोक मनु के किस चरित्र का प्रदर्शन कर रहे हैं।

न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

(मनु. 5-56)

अर्थात्मांस खाने शराब पीने और शास्त्र विरुद्ध मैथुन (व्यभिचार) में कोई दोष नहीं है। इनसे निवृत्त होना अत्यंत लाभप्रद है।

ना कृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवजेयेत॥

(5-48)

अर्थात्प्राणियों की हिंसा के बिना कहीं मांस की उत्पत्ति नहीं होती और प्राणियों का वध सुख देने वाला नहीं है, अतः मांस को सर्वथा त्याग

देना चाहिए।

मनुस्मृति के श्लोक (5-56) में मनु अपने चरित्र का जो पक्ष रख रहा है। (5-48) में उसे प्रत्याखित करके उसके विरुद्ध दूसरा पक्ष रख देता है। दो विरोधी मत एक साथ-साथ मनुस्मृति के आन्तरिक विषय बन रहे हैं। मनुस्मृति का यह एक ही उदाहरण नहीं है। बल्कि ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जो मांसाहार के पक्ष और विपक्ष में मनु ने रच डाले हैं जैसे

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांस नाति मानवः।
स प्रेत्य पशुतां यान्ति संभवानेकविंशतिम्॥

(5-35)

अर्थात्जो मानव यथाविधि श्राद्ध या मधुपर्क में समर्पित मांस को नहीं खाता वह मरकर इक्कीस जन्मों तक पशुओं की योनि में जन्म पाता है।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयः विक्रयी।
संस्कृत्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकः॥

(5-51)

अर्थात्पशु को काटने की सलाह देने वाला, काटने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, पकाने वाला, लाने वाला और खाने वाला ये सब पापी हैं।

एक ही रचनाकार की किसी एक कृति में इतना विरोधाभास संसार की किसी अन्य साहित्यिक कृति में नहीं है। मनुस्मृति में एक ओर मनु और वेदों का संबंध बताते हुए कहा गया है

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मोमनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥

(2-7)

अर्थात्जो कुछ किसी के लिए धर्म में मनु ने कहा है वह सब वेदों में विद्यमान है, क्योंकि वेद सर्वज्ञानमय है।

इस श्लोक के अंतर-नीहित भावों की समीक्षा करें तो मनु का यह कथन कि जो मनुष्य कथा विधि श्राद्ध या मधुपर्क में समर्पित मांस को

नहीं खाता वह मरकर इक्कीस जन्मों तक पशुओं की योनि में जन्म पाता हैं।' वेदों में होना चाहिए, लेकिन वेदों में किसी भी प्रकार से मांस खाने का विधान है ही नहीं फिर मनु के संबंध में इतनी भ्रामक स्थापना क्यों हैं? मनु जो कह रहा है वह वेदों में क्यों नहीं मिल पा रहा है? इन श्लोकों के अतिरिक्त भी श्लोक (5-27) मनुष्य मंत्रों से पवित्र किया हुआ यदि ब्राह्मणों की इच्छा हो तब शास्त्रोक्त विधि के अनुसार यज्ञ के लिए अर्पित मांस प्राण संकट में पड़ जाने पर खाले। (5-30) खाने के अधिकारी मनुष्य भक्ष्यं प्राणियों को प्रतिदिन खाते हुए भी किसी पाप का भागी या दोषी नहीं होता, क्योंकि खाने के लिए प्राणी और उनके खाने वालों को परमात्मा ने ही बनाया है।

(5-13) यज्ञ के लिए मांस का खाना 'देवविधि' मानी गई है। इससे अन्य किसी भिन्न विधि से मांस खाना 'राक्षसविधि' कही गई है। (5-32) खरीदकर अथवा स्वयं मारकर मांस तैयार करके अथवा दूसरे के द्वारा भेंट किए गए मांस को देवताओं और पितरों को अर्पण करके खाने से मनुष्य दोष का भागी नहीं होता। (5-33) आपत्ति रहित काल में मांस खाने की विधि को जानने वाला द्विज उक्त विधि के बिना मांस को न खाए, क्योंकि विधि रहित रूप में मांस खाकर परलोक में उन खाए गए प्राणियों द्वारा बलात् खाया जाता है।

(5-34) धन के लिए पशुओं को मारने वाले व्यक्ति को भी पाप नहीं होता जैसा देवताओं के उद्देश्य के बिना मांस खाने वाले को मरने के बाद होता है। (5-36) ब्राह्मण को चाहिए कि कभी भी मंत्रों से पवित्र न किए गए पशुमांस को न खाए, बल्कि सनातन विधि में आस्था रखकर मंत्रों द्वारा पवित्र किए गए मांस को ही खाएं। (5-38) यज्ञ-देवता आदि के बिना पशुओं को मारनेवाला मरकर जन्म-जन्मांत्रों में जितने उस पशु के रोम हैं उतनी ही बार मारा जाता है।

(5-39) ब्रह्मां ने स्वयं पशुओं को यज्ञ के लिए ही बनाया है और यज्ञ सबके कल्याण के लिए है। इस कारण से यज्ञ में पशु आदि प्राणियों की हिंसा करना अहिंसा ही है। (5-40) औषधियां, पशु, वृक्ष, तिर्यक यौनि वाले सांप, कछुए आदि, तथा पक्षी यज्ञ के लिए मृत्यु को प्राप्त होकर फिर

उद्धार या उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं। (5-41) मधुपर्क में, यज्ञ में, श्राद्ध और देवकर्म में केवल इन्हीं स्थानों पर पशुओं की हिंसा करनी चाहिए कहीं नहीं, ऐसा मनु ने कहा है। (5-42) वेद के रहस्य को जानने वाला द्विज ऊपर वर्णित इन अवसरों पर पशुओं की हिंसा करके अपने को और पशु को उत्तम जाति प्राप्त कराता है।

(5-44) इस चर-अचर संसार में जो हिंसा वेदों के विधानों द्वारा निश्चित की गई है, उसे अहिंसा ही समझना चाहिए, क्योंकि धर्म वेद से उत्पन्न हुआ है। (4-28) अग्नियां नवान्न और मांस की लोलुप होती हैं, अतएव जो द्विज नए अन्य और पशु मांस से अग्नि में हवन नहीं करते उनके प्राणों को ही अग्नियां खाना चाहती हैं। (5-18) सेहं नामक प्राणी, शल्यक, गोह, गेंडा, कछुआ और खरगोश इनको पांच नाखून बालों में से तथा ऊटं को छोड़कर एक ओर दांत वाले पशुओं को खाने योग्य कहा है। (5-22) ब्राह्मणों को यज्ञ के लिए उत्तम पशुओं और पक्षियों को मार लेना चाहिए और सेवक के पालन-पोषण के लिए भी मार लेना चाहिए। प्राचीन काल में महर्षि अगस्त ने भी ऐसा ही किया था। (5-23) क्योंकि पहले ही यज्ञों में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के संयुक्त अनुष्ठानों में भक्ष्य कहे गए पशु और पक्षियों के पुरोडाश (हवि)यज्ञ के लिए निर्मल अन्न या हविष्यान्न बने हैं, अतः अब भी बनने चाहिए।

ये उपरोक्त श्लोक मनुस्मृति के वे श्लोक हैं। जिनमें मनु मांस खाने का समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं, लेकिन इनमें से एक भी मंत्र वेदों में नहीं है। तो फिर क्या मनुस्मृति के वे अंश असत्य हैं कि मनु ने जो भी मनुस्मृति में कहा है वह सब वेदों में विद्यमान है? मनु एक वैदिक ऋषि है और कोई भी वैदिक ऋषि धर्मशास्त्रों में मांस खाने का उपदेश नहीं कर सकता। यदि एक भी ऋषि मांसाहर समर्थक होता तो वेदों में एक न एक ऋचा मांसाहार की संस्तुति करती दिखाई देती।

मनु के संबंध में एक अवधारणा यह भी हो सकती है कि वे वैदिक ऋषि न होकर कोई वाममार्गी थे, अतः मांसाहार का उपदेश देना उनका एक स्वाभाविक कर्म बन जाता है, लेकिन जब वे मनुस्मृति के अनेक श्लोकों में मांसाहार को मानव स्वभाव के विरुद्ध और एक पाप कर्म के तुल्य बताते

हैं तो वे वाममार्गी भी नहीं हो सकते। निम्नलिखित श्लोकों में वे मांसाहार को पापकर्म मानते हैं और इसके मूल में हिंसा का उल्लेख करते हुए इसे मानव के लिए कल्याण विरोधी कृत्यों में स्थापित करते हैं

मांसाहार के प्रति मनु की अनास्था

मनु श्लोक (5-48) में कहते हैं कि प्राणियों की हिंसा बिना कहीं मांस की उत्पत्ति संभव नहीं हैं, अतः मांस को सर्वथा त्याग देना चाहिए। (2-177) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी सुरा, मांस, स्त्री और पुरुष का संग न करें और प्राणियों की हिंसा छोड़ दें। (4-170) जो अधार्मिक मनुष्य हैं और जिसका अधर्म से सिंचित हुआ धन है तथा जो हिंसा में प्रवृत्त रहता है वह इस लोक परलोक अर्थात् परजन्म में भी सुख को कभी प्राप्त नहीं हो सकता। (5-46) जो व्यक्ति प्राणियों को बंधन में डालने, वध करने, उनको पीड़ा पहुंचाने की इच्छा नहीं करता वह सब प्राणियों का हितैषी बहुत अधिक सुख को प्राप्त करता है।

(5-47) जो व्यक्ति किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता वह जिसका ध्यान करता है, जिस कार्य को करता है और जहां धैर्ययुक्त मन को लगता है उसको सुगमता से प्राप्त कर लेता है। (5-49) और मांस की उत्पत्ति जैसे होती है उस प्रक्रिया को देखकर अर्थात् प्राणियों की हत्या और बंधन के कष्टों को देखकर यह भी अच्छा है कि सब प्रकार के मांसभक्षण से दूर रहें। (5-53) जो व्यक्ति सौ वर्ष तक प्रतिवर्ष अश्वमेघ यज्ञ करता है और जो मांस नहीं खाता है, उन दोनों के पुण्य बराबर होते हैं। (5-54) पवित्र फल-मूल खाने से और नीवार तथा मुनियों के अन्न चावलादि खाने से भी वह पुण्य प्राप्त नहीं होता जो मांसाहार छोड़ने से होता है।

(5-55) इस जन्म में मैं जिसके मांस को खा रहा हूं पर जन्म में वह मुझे खाएगा यही मांसाहार का तात्पर्य है। यही मांस खाने का फल विद्वान लोग बतलाते हैं। (6-14) मदकारी मदिरा, भांग आदि पदार्थ, सब प्रकार के मांस और भूमि में उत्पन्न होने वाले कवक (कुकुरमुत्ता) और भूतृण नामक विशेषशाक, सफेद सद्विंजन और लिसौड़े के फल, इन्हें भोजन में वर्जित रखे अर्थात् न खाए। (4-246) दृढ़ संकल्प करने वाला, स्वभाव से कोमल,

जितेन्द्रिय, हिंसा के स्वभाव से रहित, हिंसक, क्रूर, दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक रहने वाला धर्मात्मा मन को जीतकर विद्यादि दान से सुख को प्राप्त होवे। (6-52)

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि महर्षि मनु मांसाहार के समर्थक नहीं थे अपितु वे इससे भी आगे बढ़कर मांसाहार को बहुत बड़ा पाप समझते थे और इसके मूल में स्थित हिंसा को त्याज्य मानते थे।

उपरोक्त उल्लिखित श्लोक मनु को एक अहिंसक ऋषि सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं, लेकिन इनसे भी सशक्त तर्क 'प्रायश्चित' का है। यह एक अत्यंत सरल स्थापना है कि यदि कोई व्यक्ति अपने किसी कार्य पर प्रायश्चित कर रहा है तो वह कार्य उससे किसी बाह्य दबाव से या भूलवश हुआ है और वह कार्य उसके लिए निन्दनीय है तथा उसकी आत्मा के विरुद्ध है। मनु ऐसे ही कार्यों के लिए प्रायश्चित का विधान रचते हैं जिसके मूल में हिंसा है और वह हिंसा उस व्यक्ति से भूलवश हो गयी और वह उसकी मनोवृत्ति के विरुद्ध हुई है।

वैसे तो मनु ने अनेकों निन्दनीय कर्मों के प्रायश्चित का विधान रचा है जैसेब्रह्महत्या का प्रायश्चित, क्षत्रिय आदि के वध का प्रायश्चित, अगम्यागमनीय का प्रायश्चित, व्रात्यों का प्रायश्चित, गुरुस्त्रीगमन का प्रायश्चित आदि, लेकिन इस अध्याय की सीमा में मांसाहार और इससे संबंधी हिंसा के प्रायश्चित पर ही प्रकाश डालना है। निम्नलिखित श्लोक ऐसे ही प्रायश्चित को दर्शाते हैं

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्यावृतं चरेत्॥

(11-131)

अर्थात्मनु कहते हैं बिल्ली, नेवला, नीलकंठ, मेंढक, कुत्ता, गोह, उल्लू और कौआ, इतनी हत्या करने पर शूद्र-हत्यावाला अर्थात् एक सांड सहित दस सफेद गाएं ब्राह्मण को दान में देवें। (11-131) ब्राह्मण सांप को मारकर काले लोहे से बनी छड़ दान करें।

घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ।
शुके द्विहायनं वत्सं क्रौंचं हत्वा त्रिहायनम्॥

अर्थात्सूअर को मारने पर एक घी से भरा घड़ा, तीतर की हत्या करने पर 15 सेर तिल, तोते को मारकर दो वर्ष का बछड़ा और क्रौंच पक्षी को मारकर तीन वर्ष का बछड़ा ब्राह्मण को दान में देवें।

हत्वा हंसं बलाकां च बकं वर्हिणमेव च।
वानरं श्येनमासौ च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम्॥

(11-135)

अर्थात्हंस, छोटा बगुला, बगुला, मोर, बंदर, बान और मुर्गा, इनको मारकर ब्राह्मण को एक गाय दान में सौंपे।

वासो दद्याद्धयं हत्वा पंच नीलान्वृषानगजम्।
अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकदायनम॥

(11-136)

अर्थात्घोड़े को मारकर कपड़ा, हाथी को मारकर पांच नीले बैल, बकरी, भेड़, गधा इनको मारकर एक वर्ष का बैल दान करें।

क्रव्यांस्तु मृगान्हत्वा धेनूं दद्यात्पयस्विनीम्।
अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्॥

(11-137)

अर्थात्मांस खाने वाले शेर बाघ आदि पशुओं को मारकर दूध वाली एक गाय का दान करे, मांस न खाने वाले हिरण आदि पशुओं को मार कर एक बड़ी बछिया और ऊंट को मारकर एक रत्ती सोना दान करें।

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे।
पूर्णे चानस्यनस्ना तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत्॥

(11-140)

अर्थात्हड्डी वाले छोटे जीवों में एक हजार की हत्या करने पर और

बिना हड्डी वाले गाड़ी भर छोटे जीवों की हत्या करने पर शूद्र हत्या अर्थात्एक सांड सहित दस सफेद गायें ब्राह्मण को दान में देवे।

किंचिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां, प्राणायामेन शुद्धयति॥

(11-141)

अर्थात्हड्डी वाले क्षुद्र-जन्तुओं का वध करने पर ब्राह्मणों को कुछ ही दान करें और बिना हड्डी वाले क्षुद्र-जन्तुओं की हत्या करने पर प्राणायाम से ही शुद्धि हो जाती है।

इन प्रायश्चित-विधानों के अतिरिक्त मनुस्मृति में पंचमहायज्ञों का विधान है। इनमें एक यज्ञ ऐसा है जो मनु को एक अहिंसक ऋषि सिद्ध कर देता है। व्यक्ति अपने जीवन में ऐसे अनेकों कार्य करता है जो उसके जीवन के लिए अनिवार्य है, लेकिन उन कार्यों में छोटे-मोटे कीटों की हिंसा की संभावना बनी रहती है। वह व्यक्ति भले ही कितनी सावधानी से उस कार्य को संपन्न करें, परंतु उसमें हिंसा हो ही जाती है। यद्यपि सामाजिक दृष्टि से वह व्यक्ति उस हिंसा के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता, लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से वह दोषी सिद्ध हो जाता है। इसी दोष-निवारण के लिए उस यज्ञ का विधान किया गया है। मनु ने उन पाप-कर्मों को निम्नलिखित श्लोक से दर्शाया है

पंच सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥

(3-68)

अर्थातचूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली तथा पानी का घड़ा गृहस्थियों के ये पांच हिंसा के स्थान हैं, जिनको प्रयोग में लाते हुए एक गृहस्थी पापों में बंध जाता है।

जो व्यक्ति ऐसी सूक्ष्म हिंसा से, जो अनिवार्य रूप से होनी ही हैं इतना भयभीत है कि कहीं उनके कर्म-फलों को न भोगना पड़ जाए तो वह बड़े-बड़े पशुओं की हिंसा के लिए कैसे सोच सकता है? मनु कृषि व्यवसाय को

इसलिए अच्छा व्यवसाय नहीं मानता कि उसमें हिंसा की संभावना बनी रहती है, तो फिर वह हिंसा समर्थक कैसे हो सकता है? वह मांसाहार के प्रति कैसे सकारात्मक विचार रख सकता है

कृषिं साध्विति मन्यते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम्॥

(1084)

अर्थात्कोई कृषि को अच्छा मानते हैं, लेकिन श्रेष्ठ लोग इस वृत्ति को निन्दित मानते हैं, क्योंकि लोहे के मुख वाला हल भूमि तथा भूमि में रहने वाले जीवों की हत्या कर देता है।

जो व्यक्ति इतना कारुणिक और विनम्र हो कि पेड़-पौधों में भी जीवन की कल्पना किए हुए हो और उन्हें नष्ट करने के प्रयास को जीव-हत्या के समान मानता हो तो वह पशु-वध करके या अन्य विधि से प्राप्त मांस का भक्षण कैसे कर सकता है? मनु पेड़-पौधों को नष्ट करने पर भी प्रायश्चित का विधान रचता है, तो उसकी मनोवृत्ति कैसी होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यभृक्शतम्।
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम्॥

(11-142)

अर्थात्फल देने वाले आम, सेब आदि वृक्षों के, झाड़, पेड़ों के साथ चढ़ने वाली लताएं और भूमि पर फैलने वाली लताएं तथा फूल वाले पेड़, इनके काटने पर एक सौ बार गायत्री मंत्र का जाप करें।

उपरोक्त विवरणों से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि महर्षि मनु अहिंसक मनोवृत्ति के थे। वे मांसाहार के मूल में हिंसा को देखते थे, अतः उन्होंने मांसाहार को त्याज्य कहा है। मनुस्मृति में मांसाहार के समर्थन में उल्लिखित श्लोक मनु की विचारधारा के द्योतक नहीं है। उन श्लोकों को बाद में मनुस्मृति में समाहित किया गया है। निश्चय ही ये श्लोक प्रक्षिप्त हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती ने इन्हें प्रक्षिप्त माना है और मनुस्मृति के

समकालीन भाष्यकार डॉ. सुरेंद्र कुमार ने इन्हें प्रक्षिप्तों के मानदंड के आधार पर प्रक्षिप्त घोषित किया है।

elibrary.thearyasamaj.org

मनु की दृष्टि में नारी

नारी को लेकर मनु संदेह के घेरे में है। मनु नारी के प्रति कितने संवेदनशील थे इसकी समीक्षा में विद्वान एक मत नहीं हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि मनु नारी के प्रति संवेदनशील नहीं थे। अपनी इस अवधारणा को पुष्ट करने के लिए मनुस्मृति के कुछ श्लोकों को अपना साक्ष्य बनाते हैं।

जैसे

विशीलः कामवृत्तों वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्वया सततं देववत्पत्ति॥

(मनु. 5-154)

अर्थात्पतिव्रता स्त्री को दुष्टस्वभाव वाले, परस्त्रीगामी और गुणहीन पति की भी सदा देवताओं के समान पूजा-सेवा करनी चाहिए।

मनुस्मृति का यह श्लोक मनु के समक्ष अनेकों प्रश्न खड़े करता हैयदि स्त्री अपने व्यभिचारी, चरित्रहीन और दुष्ट स्वभाव वाले पति की सेवा के लिए बाध्य है तो क्या स्त्री की समाज में दयनीय स्थिति नहीं है? ऐसी उच्च चरित्र वाली नारी के लिए मनु ने ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं दी कि यदि उसे एक गुणहीन, माननीय मूल्यों का विखंडन करने वाला व्यभिचारी पति मिल जाए तो वह उससे तुरंत संबंध विच्छेद करके अपनी मानसिक प्रवृत्ति के समान किसी अन्य पुरुष से विवाह कर लें? मनु ने यहां लिंग-भेद को मान्यता प्रदान की है। उसने नारी को दूसरे स्तर का नागरिक बना डाला है और उसे एक अत्याचारी पुरुष की यंत्रणा सहने के लिए बाध्य कर दिया है।

मनुस्मृति के श्लोक (9-94) में मनु व्यवस्था देता है कि गृहस्थ धर्म का लोप न चाहता हुआ तीस वर्ष का पुरुष 12 वर्ष की मनोहारिणी कन्या से और 24 वर्ष का आठ वर्ष की कन्या से विवाह करे। क्या कन्याओं की ये अल्पायु चिकित्सकीय या मनौवैज्ञानिक या समाजिक दृष्टि से सही है? क्या यह बेमेल विवाह प्रकृति के नियमों के ही विरुद्ध नहीं जाता है? क्या 8 या 12 वर्ष की कन्याएं रजस्वला हो जाती हैं? क्या यह नन्हीं बालिकाओं का शारीरिक और मानसिक शोषण नहीं है? क्या यह नारी के प्रति अत्याचार नहीं है? ऐसे अनमेल विवाहों को तो मनु को प्रतिबंधित करने चाहिए थे और उनके विरुद्ध कठोर दंड का प्रावधान होना चाहिए था। सभ्य समाज की तो बात बहुत दूर है यह व्यवस्था तो असभ्य समाज को भी स्वीकृत नहीं हो सकती। किसी भी देश के आदिवासी भी इस व्यवस्था के प्रति आस्थावान नहीं हो सकते।

मनुस्मृति के श्लोक (2-66) में मनु कहते हैं कि स्त्रियों की यह संस्कार की क्रिया शरीर की पवित्रता के लिए यथा समय और उपयुक्त क्रमानुसार पूर्णतः मंत्ररहित करनी चाहिए। यहां 'मंत्ररहित' का अर्थ नारी को वेदों के मंत्र सुनने से वंचित रखना है। मनु ने नारी को इतनी हेय दृष्टि से देखा है कि उसे वेद पढ़ने और वेद सुनने से भी वंचित कर दिया है। इस श्लोक के भाष्यकारों ने मनु के उस चरित्र को उदघाटित किया है जिससे वह नारी को अपवित्र समझते हुए उसे वेदों के ज्ञान के लिए अपात्र माना है। क्या एक वैदिक ऋषि होते हुए मनु को नारी के प्रति इतना संवेदनहीन होना चाहिए था?

श्लोक (9-94) में मनु वेदों के विरुद्ध जाते हुए दिखाई देते हैं। वेद नारी के प्रति सहृदय थे। वेदों ने नारी को पूर्ण सम्मान के साथ वे सब सुविधाएं देने की संस्तुति की है, जो एक सभ्य समाज में होनी चाहिए। वेदों में विधवाओं के लिए पुनर्विवाह और ऐसी नारी के लिए जो अपने पति की अक्षमता या अन्य कारणों से संतान सुख नहीं प्राप्त कर सकती नियोग की प्रथा का प्रावधान किया है, लेकिन मनु ने इस नियोग प्रथा को सनातन धर्म के विरुद्ध बताकर प्रतिबंधित कर दिया है और नारी को उस

संतान सुख से वंचित कर दिया है जो उसका स्वाभाविक और सबसे बड़ा सुख है।

श्लोक (2-67) में मनु ने नारी को केवल घर की चार-दीवारी के अंदर ही सीमित कर दिया है। उसे उन संस्कारों से भी वंचित कर दिया है जो पुरुष के साथ-साथ नारी के लिए भी आवश्यक हैं। उन्हें उच्च शिक्षा के लिए घर से बाहर जाने के लिए प्रतिबंधित कर दिया है। श्लोक का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार हैस्त्रियों का विवाह संस्कार ही उनको वेदोक्त संस्कार है अर्थात् उनके लिए अलग से उपनपन जैसे संस्कारों की आवश्यकता नहीं है। उनका पति की सेवा ही गुरुकुलवास है। घर के काम ही अग्निहोत्रादि धार्मिक क्रियाएं हैं अर्थात् उन्हें यज्ञादि करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन क्या नारी की क्षमताओं को इस तरह से सीमित कर देना नारी के प्रति मनु की हेय-भावाना नहीं है? मनु से अपेक्षा थी कि नारी के संबंध में यह व्यवस्था देते कि नारी और पुरुष ईश्वर की दो समान रचनाएं हैं, अतः उन्हें विकास के समान अवसर मिलने चाहिए।

एक अन्य श्लोक (3-239 व 240) में मनु व्यवस्था देते हैं कि चांडाल, सूअर, मुर्गा, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और नपुंसक भोजन करते हुए ब्राह्मण को न देखें। देवकर्म अथवा श्राद्धकर्म में, हवन करने में, दान देने में जो वस्तु उनके द्वारा देख ली जाती है वह वस्तु फलहीन हो जाती हैंवृथा जाती है। इस उपेक्षित और आपत्तिजनक वर्ग में रजस्वला स्त्री और नपुंसक को सम्मिलित करना अच्छी सभ्यता के लक्षण नहीं है। एक रजस्वला स्त्री को ब्राह्मणों द्वारा हेय दृष्टि से देखना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। यह नारी की एक स्वाभाविक और प्राकृतिक क्रिया है और इसके मूल में नारी की वह सृजनात्मक शक्ति है जिसके कारण नारी मातृशक्ति के रूप में सम्मानित होती है। फिर यह क्रिया घृणित क्यों है? इस क्रिया को वे ही व्यक्ति घृणित मान सकते हैं जिनके अंदर मानवीय मूल्यों के प्रति सम्मान नहीं है। यदि मनु इस अवधि में नारी को अपवित्र मानता है तो नारी के लिए ऐसे सुरक्षित साधनों के उपयोगी की संस्तुति करते जैसे आधुनिक नारियां उपयोग में ला रही हैं।

श्लोक (3-11) में मनु व्यवस्था देते हैं कि जिस लड़की का कोई भाई न हो अथवा जिसके पिता का ज्ञान न हो ऐसी कन्या से बुद्धिमान मनुष्य पुत्रिका धर्म की शंका से विवाह न करे। यह एक आश्चर्य का विषय हैं कि मनु ने बिना भाई की बहन को एक विद्वान के लिए क्यों प्रतिबंधित कर दिया? एक विद्वान युवक के लिए एक विदुषी युवती हो यह व्यवस्था तो बोधगम्य है, लेकिन एक युवती की योग्यता भाई के न होने या होने से आंकना जहां हास्यस्पद लगता है वहां बिना भाई की लड़कियों के प्रति अत्याचार से कम नहीं लगता है। किसी बहन का भाई न होना उस बहन का दुर्भाग्य तो कहा जा सकता है, लेकिन यह स्थिति उसकी योग्यता में ह्रास का कारण नहीं मानी जा सकती।

श्लोक (9-2) और (9-3) में मनु ने नारी के चरित्र पर संदेह व्यक्त किया है और उसे इस योग्य नहीं माना है कि उसे आंशिक स्वतंत्रता भी दी जा सके। (9-2) का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार हैपति आदि आत्मीयजनों को चाहिए कि वे रात दिन स्त्रियों को स्वाधीन न रखें। आनंदप्रद विषयों में लगी हों तब भी अपने वश में रखें। मनु का नारी के प्रति यह अविश्वास एक सुसंस्कृत समाज का प्रतिबिंब नहीं कहा जा सकता। सीमा से अधिक परतंत्रता किसी भी व्यक्ति को नकारात्म दिशा की ओर ले जा सकती है।

(9-3) में मनु व्यवस्था देते हैं कि बचपन में स्त्री की रक्षा पिता करता है, युवावस्था में पति करता है और बुढ़ापे में पुत्र करता है। यहां तक तो मनु की व्यवस्था सही कही जा सकती थी, लेकिन इससे आगे जो मनु ने कहा वह नारी की गरिमा के विरुद्ध जाता है। आगे मनु ने कहा है कि 'स्त्री स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है।' मनु का यह कथन नारी के अस्तित्व पर उंगली उठाता हुआ प्रतीत होता है। इसे एक स्त्री के स्वाभिमान पर सीधा आक्षेप भी कह सकते हैं। मनु की दृष्टि में नारी की स्थिति इतनी संदिग्ध क्यों है? क्या वैदिक काल में नारी स्वतंत्र नहीं थी?

श्लोक (9-14) में मनु ने नारी को एक ऐसा भौतिक पदार्थ मान लिया है जो रासायनिक क्रिया करने में किसी भी नैतिक या अनैतिक बाध्यताओं पर विचार नहीं करता। मनु कहता है कि स्त्रियां न सुंदर या असुंदर की

परीक्षा करती हैं और न अवस्था विशेष पर ध्यान देती हैं। सुंदर हो या असुंदर हो बस 'यह पुरुष है' इतना ही देखकर उसके साथ भोग कर लेती है।

(9-15) में मनु कहते हैं कि 'पुरुष को देखते ही भोग की इच्छा होना, चंचल चित्र वाली होना, स्थिर स्नेह का अभाव होना, स्त्रियों की इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों के कारण पतियों के द्वारा यत्नपूर्वक रक्षा की जाती हुई भी, ये स्त्रियां यहां जगत में पतियों के विरुद्ध आचरण कर जाती है।' यहां भी मनु ने नारी के नाकारात्मक स्वरूप को प्रकाशित किया है जिससे यह सिद्ध होता है कि नारी में मर्यादा का नितांत अभाव है।

मनुस्मृति के कुछ श्लोकों में मनु पुरुषों के अधिकारों की रक्षा करते हुए और नारी के अधिकारों का हनन करते हुए प्रतीत होते हैं। समान परिस्थितियों में नारी और पुरुष के प्रति मनु का दृष्टिकोण अलग-अलग है, जबकि किसी भी सम्यदेश के साहित्य या धर्मशास्त्रों में यह दृष्टिकोण समानता पर आधारित होना चाहिए।

मनु पुरुष को यह अधिकार देते हैं कि यदि उसकी स्त्री शराब पीने वाली, व्याधिग्रस्त, मारनेवाली (हिंसा में विश्वास करने वाली) दुराचार वाली, पति के प्रतिकूल आचरण करने वाली और सदा धन को नष्ट करने वाली हो तो पति को उसे छोड़कर दूसरा विवाह कर लेना चाहिए।

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्।
व्याधिता वाऽधिवेतव्या हिंस्रार्थध्नी च सर्वथा॥

(9-80)

अर्थात्लेकिन यदि कोई पुरुष ऐसा आचरण करे तो क्या मनु उसकी पत्नी को यह अधिकार देता है कि वह उस पुरुष को छोड़कर दूसरा विवाह कर लें? यह नारी के शोषण की ही पराकाष्ठा है कि मनु उस स्त्री को यह अधिकार नहीं देता

उन्मत्तं पतितं क्लीवमबीजं पाप रोगिणम्।

न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम्॥

(9-79)

अर्थात्स्थायी पागल, पतित, नपुंसक, सन्तान उत्पन्न करने में अक्षम, कुष्ठ आदि से पीड़ित पति की उपेक्षा करने वाली स्त्री को नहीं छोड़ा जा सकता।

इन दोनों श्लोकों से नारी के प्रति मनु की मानसिकता का अध्ययन एक सामान्य जन को भी इस स्थापना पर खड़ा कर देता है कि मनु पर लिंग भेद का आरोप सही है। (9-17) में मनु नारी को पुरुषों की तुलना में और पीछे धकेल देता है। मनु के चिंतन की दिशा शास्त्रकार ने इस प्रकार दर्शायी हैशय्या, आसन, आभूषण, काम, क्रोध, कुटिलता, द्रोह और निंदित आचरण, ये मनु ने स्त्रियों के लिए बनाए हैं। (9-19) में मनु कहता है कि स्त्रियों की संस्कार आदि क्रियाएं मंत्रपूर्वक नहीं होती, यही धर्म में व्यवस्था है। स्त्रियां धर्मशास्त्र के ज्ञान से हीन और वेदादि के मंत्रों के अधिकार से हीन हैं, अतः वे झूठ का रूप हैं अर्थात् अपवित्र हैं ऐसी मान्यता है।

इन श्लोकों के अतिरिक्त और भी अनेकों श्लोक हैं जो समाज में नारी की स्थिति को दयनीय बना रहे हैं। एक सभ्य समाज में मनु की ये व्यवस्थाएं स्वीकार नहीं की जा सकती। डॉ. अम्बेडकर ने इन्हीं अप-व्यवस्थाओं के आधार पर मनुस्मृति को नारी विरोधी सिद्ध किया था और इसके बहिष्कार की घोषणा की थी।

यह मनु का एक पक्ष था जिसके आधार पर उसे नारी-विरोधी सिद्ध करना बहुत सरल कार्य है, लेकिन मनु का दूसरा पक्ष भी है जिसे इस मत के समर्थक कि मनु नारी जाति के लिए अति संवेदनशील थे इसी मनुस्मृति से सिद्ध कर देते हैं। अपनी उपपत्ति में जिन श्लोकों का चयन करते हैं वे निम्नलिखित हैं

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वाः तत्राफलाः क्रियाः॥

(3-56)

अर्थात्मनु कहते हैंजिस परिवार में नारियों की पूजा होती है अर्थात् नारियों का आदर-सम्मान होता है उस घर में देवता निवास करते हैं अर्थात् उस परिवार पर देवताओं की कृपा-दृष्टि बनी रहती हैं, जिसके प्रभाव से वहां अच्छे गुणों वाली सन्तानें उत्पन्न होती हैं और सभी सुख और समृद्धि से जीवन व्यतीत करते हैं, लेकिन इसके विपरीत जिस परिवार में नारियां प्रताड़ित की जाती हैं, उन्हें आदर सम्मान से वंचित रखा जाता है वहां कोई कार्य सफल नहीं होता और सम्पूर्ण परिवार अभावों और कष्टों से व्यथित रहता है।

महर्षि मनु इससे अधिक नारी के प्रति और क्या सोच सकते थे? नारी के सम्मान से घर की सुख-समृद्धि को जोड़कर मनु ने सिद्ध कर दिया है कि वे नारी के प्रति अत्यंत ही संवेदनशील हैं। मनु का नारी के प्रति यह चिंतन आज भी समाज में देखा जा सकता है। जिस परिवार में नारी को अपमानित किया जाता है और उसे प्रताड़ना दी जाती है, वह घर विपदाओं में फंसता जा रहा है और जिस घर में नारी को सम्मान मिलता है वह घर निरंतर विकास करता जा रहा है।

पुरुषों की सुविधाओं की तुलना में मनु नारी को अधिक सुविधा देने के पक्ष में है। अपनी किसी भी अवस्था में नारी पुरुषों द्वारा शोषित न हो और उसके अधिकारों का कहीं हनन न हो, अतः मनु ने यह व्यवस्था दी है

कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः।
मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता॥

(9-4)

अर्थात्विवाह की अवस्था में कन्या को न देने वाला अर्थात् विवाह न करने वाला पिता निन्दनीय होता है और विवाह पश्चात ऋतुकाल के अनंतर सहवास न करने वाला पति निन्दनीय होता है। पति की मृत्यु के बाद माता का भरण-पोषण आदि न करने वाला पुत्र निन्दनीय होता है। क्या इस मनु की व्यवस्था से नारी अपने को सुरक्षित और चिन्तारहित नहीं समझ सकती? नारी की प्रत्येक संवेदनशील अवस्था में नारी को सभी मनवांछित

सुविधाएं उपलब्ध कराने का मनु का प्रयास क्या प्रशंसनीय नहीं है?

नारी की सुरक्षा के प्रति चिंतित मनु ने ऐसे अनेकों श्लोक रचे हैं जो नारी-सुरक्षा को ही पुरुष का प्रथम कर्त्तव्य निर्धारित करते हैं। मनु इस सत्य से अवगत थे कि जो व्यक्ति परिवार, समाज या राष्ट्र नारी की सुरक्षा करने में सक्षम नहीं होता वह शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाता है। किसी व्यक्ति या परिवार की, संतान की या उसके चरित्र या आचरण की रक्षा तभी संभव है यदि वह उस परिवार की स्त्रियों की रक्षा करने में समर्थ हो

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वां च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति॥

(9-7)

अर्थात्प्रयत्नपूर्वक अपनी स्त्री की रक्षा करता हुआ व्यक्ति ही अपनी संतान, आचरण, कुल और आत्मा तथा अपना धर्म इनकी रक्षा करते हैं।

महर्षि मनु नारी को संपूर्ण मातृत्व प्रदान करके उसे समग्र समाज के लिए पूज्य सिद्ध करते हैं। एक पति की दृष्टि में भी उसकी पत्नी को उसकी जननी का सम्मान दे देते हैं। ऐसी मातृशक्ति को मानवता के सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठापित करके मनु नारी के प्रति श्रद्धानत हो जाते हैं। ऐसा उदाहरण संसार के किसी धर्मग्रंथ में मिलना दुर्लभ है

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥

(9-8)

अर्थात्मनु कहते हैंपति वीर्यरूप में स्त्री में प्रवेश करके गर्भ बनकर संतानरूप से संसार में उत्पन्न होता है। स्त्री का यही स्त्रीत्व है जो इस स्त्री में संतानरूप से पति पुनः उत्पन्न होता है।

'मनु ने नारी की उपेक्षा की है' मनु के ऊपर लगाया गया यह आरोप (9-11) से स्वतः ही अर्थहीन हो जाता है। मनु कहते हैंअपनी स्त्री को धन की संभाल और उसके व्यय की जिम्मेदारी में, घर एवं घर के पदार्थों

की शुद्धि में, धर्म संबंधी अनुष्ठान-अग्निहोत्र आदि में, भोजन पकाने में और घर की सभी वस्तुओं की देखभाल में लगाएं। यदि अब भी मनु को संदिग्ध अवस्था में देख रहे हैं तो निम्नलिखित श्लोक उस संदेह को दूर कर सकेगा

प्रजनार्थं महाभागा पूजार्हागृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषाऽस्ति कश्चन॥ *(9-26)*

अर्थात्हे पुरुषो! संतानोत्पत्ति के लिए महाभाग्योदय करने वाली, पूजा के योग्य गृहाश्रम को प्रकाशित करती संतानोत्पत्ति करने-कराने वाली घरों में स्त्रियां हैं। वे श्री अर्थात् लक्ष्मीरूप होती हैं, क्योंकि लक्ष्मी, शोभा, धन और स्त्रियों में कुछ भेद नहीं है।

इस श्लोक में नारी को महिमा मंडित करने वाली विचारधारा वैदिक विचारधारा है। वेदों में पुरुषों की तुलना में नारी को महिमा मंडित किया गया है। वेदों की किसी भी विचारधारा को जो शास्त्रकार अपने शास्त्र में समाविष्ट करना चाहेगा वह निश्चय ही वैदिक मान्यताओं को सम्मानित करने वाला होगा। वेदों की मान्यताएं ही मनुस्मृति के विषय-उपविषय हैं, अतः मनु एक वैदिक ऋषि हैं और नारी सम्मान उनका स्वाभाविक चिंतन है। (9-28) में भी मनु के इस स्वाभाविक चिन्तन का प्रक्षेप हैसंतानोत्पत्ति, धर्मकार्य, उत्तम सेवा और रति तथा अपना और पितरों का जितना सुख है वह सब स्त्री के ही अधीन होता है।

(5-150) में मनु स्त्रियों से अपेक्षा कर रहे हैं कि वे अतिप्रसन्नता से घर के कार्यों में चतुराई युक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार, घर की शुद्धि और व्यय में अत्यंत उदार रहें, अर्थात् सब वस्तुओं को इस प्रकार बनाए जो औषधरूप होकर शरीर या आत्मा में रोग को न आने दे। जो-जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत रखे और पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर-चाकरों से यथायोग्य काम ले और घर के किसी काम को न बिगड़ने दे।

यदि मनुस्मृति के श्लोक (3-55 से 62) के आधार पर मनु के चिन्तन दर्शन का मूल्यांकन करें तो वे भारतीय संस्कृति के शिखर पुरुष हैं जिन्होंने

नारी को सर्वाधिक सम्मान दिया है

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भुषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥

(3-55)

अर्थात्पिता, भ्राता, पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहन, स्त्री और भौजाई आदि स्त्रियों की सदा पूजा करें, अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण, भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से प्रसन्न रखें। जिनको कल्याण की इच्छा हो वे स्त्रियों को कष्ट कभी न दें। (3-57) जिस कुल में स्त्रियां अपने-अपने पुरुषों के वेश्यागमन, अत्याचार व व्यभिचार आदि दोषों से शोकातुर रहती हैं, वह कुल शीघ्र विनाश को प्राप्त हो जाता है और जिस कुल में स्त्रीजन पुरुषों के उत्तम आचरणों से प्रसन्न रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है। (3-58) जिन कुल और घरों में अपूजित अर्थात् सत्कार को न प्राप्त होकर स्त्रियां जिन गृहस्थों को शाप देती हैं, वे कुल तथा ग्रहस्थ इस प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं मानो उन्हें किसी ने विष दे दिया हो।

मनु नारी को व्यक्ति या परिवार के कल्याण का स्रोत मानते हैं, अतः नारी को प्रसन्न रखने के लिए पुरुषों को प्रेरित करते हैं

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषुत्सवेषुच॥

(3-59)

ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि स्त्रियों को सत्कार के अवसरों और उत्सवों में भूषण, वस्त्र खान-पान आदि से सदा पूजा अर्थात् सत्कारयुक्त प्रसन्न रखें।

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ *(3-60)*

अर्थात्मनु पुरुषों को सावधान करते हैं कि हे गृहस्थों! जिस कुल में पत्नी से प्रसन्न पति और पति से पत्नी सदा प्रसन्न रहती है, उस कुल में निश्चित कल्याण होता है। और यदि दोनों एक दूसरे से अप्रसन्न रहते

हैं तो उस घर में नित्य कलह वास करती है।

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥

(3-62)

अर्थात्जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता तो उस स्त्री के अप्रसन्न रहने में सब कुछ कुल भर अप्रसन्न शोकातुर रहता है और जब पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है तब सब कुछ आनन्दरूप दीखता है।

मनु परिवार की प्रसन्नता का आधार गृहस्वामिनी की मानसिकता से संबंधित करते हैं और स्त्री की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता से परिवार के ऐश्वर्य का मूल्यांकन करते हैं। मनु के इस चिंतन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे नारी के प्रति संवेदनशील हैं और चिंतित भी। निम्न श्लोकों में उनकी चिंता स्पष्ट झलकती है

अन्योन्यस्याव्याभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥

(9-101)

अर्थात्मरणापर्यन्त पति-पत्नी में परस्पर किसी भी प्रकार के धर्म का उल्लंघन और विच्छेद न हो पाए। संक्षेप में स्त्री-पुरुष का यही साररूप मुख्य धर्म है। (9-102) विवाहित स्त्री-पुरुष सदा ऐसा यत्न करें जिस किसी भी प्रकार से वे एक दूसरे से अलग न हो पाएं अर्थात् संबंध विच्छेद न हो पाए।

कुछ विशेष वर्गों द्वारा मनु पर उछाले गए कीचड़ से भ्रमित होकर कुछ बुद्धिजीवियों ने मनुविरोधी मानसिकता बना डाली हो, लेकिन जब वे (मनु. 9-130) का अध्ययन करेंगे तो उन्हें यह सुखद आश्चर्य होगा कि मनु ने पुत्र-पुत्री को समान दृष्टि से देखा है और पैत्रिक संपत्ति में दोनों को बराबर का भागीदार माना है। इससे अधिक स्त्री सम्मान का और क्या उदाहरण हो सकता है। (9-130) और (9-192) को निरूक्त शास्त्र में इस प्रकार उद्धत किया गया है।

अविशेषेण पुत्राणाम् दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत॥

(3-1-4)

अर्थात्सृष्टि के प्रारंभ में स्वायंभुव मनु ने यह विधान किया है कि दायभाग (पैत्रक संपत्ति) में पुत्र-पुत्री को समान अधिकार होता है।

मनु यहीं तक सीमित नहीं थे, उन्हें कन्याओं के धन की सुरक्षा की भी चिंता थी, क्योंकि वे पुरुषों की मानसिकता से परिचित थे। नारी के धन को छीनकर हड़प कर जाना पुरुषों की अनीति है। इस अनीति के प्रति सचेत करते हुए मनु ने कहा हैं

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः।
नारी यानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगितम्॥

अर्थात्जो वर के बांधवपिता भाई आदि और श्तिेदार लोभ या तृष्णा के वशीभूत होकर कन्याओं के धनों को, कन्याओं की सवारी या वस्त्रों को लेकर उपभोग करके जीते हैं, वे पापी लोग नीचगति को प्राप्त होते हैं।

जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों की शिकार स्त्रियों की सुरक्षा, उनकी संपत्ति की सुरक्षा के लिए महर्षि मनु विशेष चिंतित दिखाई देते हैं। ऐसी स्त्रियों की संपत्ति की सुरक्षा का दायित्व वे राजा के कंधों पर डालते हैं

वन्ध्याऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निवकुलासु च।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च॥

(8-28)

अर्थात्बांझ और पुत्रहीन, कुलहीन अर्थात् जिसके कुल में कोई पुत्र न रहा हो, पतिव्रता स्त्री अर्थात् पति के परदेशगमन आदि कारण से जो स्त्री अकेली हो, विधवा और रोगिणी स्त्रियों की संपत्ति की रक्षा उनके समर्थ हो जाने तक राजा को करनी चाहिए। (8-29) यदि उपरोक्त स्त्रियों के धन को उनके भाई-बंधु या रिश्तेदार हर लें, तो धार्मिक राजा उन व्यक्तियों को चोर के समान दंड से शिक्षा देकर उन्हें सही रास्ते पर लाए।

स्त्रियों की सुरक्षा के दृष्टिगत नारियों की हत्या और उनका अपहरण करने वालों के लिए मृत्यु दंड का विधान रचकर मनु ने अपनी श्रद्धा नारी के प्रति अर्पित की है। बलात्कारियों के लिए यातनापूर्ण दंड देने अथवा 'देश निकाला' का आदेश देकर मनु ने नारियों की सुरक्षा को सुनिश्चित कराने का प्रयास किया है। नारी के स्वाभिमान और गरिमा को क्षति पहुंचाने वाले अपराधी को मनु कठोर से कठोर दंड देने के पक्ष में थे

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति॥

(8-323)

अर्थात्कुलीन पुरुषों और विशेषरूप से स्त्रियों का अपहरण करने पर तथा हीरे आदि की चोरी करने पर शारीरिक दंड (ताड़ना से प्राणवध तक) देना चाहिए। (9-232) में भी मनु व्यवस्था देते हैं कि स्त्रियों की हत्या करने वाले हत्यारे को प्राण-दंड देना चाहिए। (4-180) में मनु का आदेश है कि किसी को स्त्रियों के साथ लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहिए। (8-275) में मनु की व्यवस्था है कि जो व्यक्ति अपनी पत्नी पर कोई दोष मढ़कर उसकी निंदा करता है तो उस पर 100 पण दंड होना चाहिए। यदि कोई अपनी निर्दोष पत्नी को छोड़ता है तो उसके लिए मनु ने और अधिक कठोर दंड की व्यवस्था की है

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्याग मर्हति।
त्यजन्नपतितानेतान्नाज्ञा दण्डयः शतानि षट्॥

(8-389)

अर्थात्न मात न पिता न स्त्री और न पुत्र त्यागने योग्य होते हैं। निर्दोष होते हुए जो इनको छोड़े तो राजा के द्वारा उस पर 600 पण दंड किया जाना चाहिए।

मनु कन्याओं को स्वयंवर का अधिकार देते हैं, अतः अपने अभिभावकों द्वारा थोपे गए वर को स्वीकार करने के लिए वह बाध्य नहीं है। नारी स्वातंत्र्य का इससे सशक्त और क्या प्रमाण हो सकता है। जब नारी स्वेच्छा से पति

elibrary.tharpublishers.org

के चयन के लिए स्वतंत्र है तो गलत आचरण के कारण उससे संबंध विच्छेद करने के लिए भी स्वतंत्र है। प्राचीन काल में युवतियां स्वयंवर रचाती थी यह एक ऐतिहासिक सत्य है

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्युतुमती सती।
ऊर्ध्वंतु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

(9-90)

अर्थात्कन्या रजस्वला होने के बाद तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे।

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद् यदि स्वयं।
नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साऽधि गच्छति॥

(9-91)

अर्थात्पिता आदि अभिभावक के द्वारा विवाह न करने पर जो कन्या यदि स्वयं पति का वरण कर ले तो वह कन्या किसी पाप की भागी नहीं होती। न उस युवक को पाप होता है जिसे प्रतिरूप में वह वरण करती है।

हमारा आधुनिक समाज जिस स्तर तक नारी की स्वतंत्रता की कल्पना कर सकता था, मनु ने उससे और आगे बढ़कर नारी को स्वतंत्रता प्रदान की है। विधवाओं के लिए पुनर्विवाह की व्यवस्था और साथ ही नियोग द्वारा संतान प्राप्ति की व्यवस्था भी मनु की नारी जाति को उत्कृष्ट देन है। मनु ने कन्याओं को आदर सत्कार का प्रतीक बताया है, अतः विवाह में किसी भी प्रकार का लेन-देन प्रतिबंधित किया है। स्त्रियों के सुखी जीवन की कामना करते हुए वे उन्हें परामर्श देते हैं कि जीवन पर्यन्त अविवाहित रहना श्रेयस्कर है, किंतु गुणहीन दुष्टपुरुष से विवाह नहीं करना चाहिए।

कामगामरणात् तिष्ठते गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

(9-89)

विश्व में अनेकों धर्म और संप्रदाय हैं, लेकिन किसी भी धर्म में स्त्रियों

को पुरुषों के कार्यों में वह सहभागिता नहीं है जो वैदिक धर्म में है।

भारतीय संस्कृति का कोई भी धार्मिक, सामाजिक या पारिवारिक आयोजन-अनुष्ठान स्त्री को साथ लिए बिना संपन्न नहीं होता। यह वैदिक मान्यता है, जिसे महर्षि मनु ने अपने ग्रंथ मनुस्मृति का विषय बनाया है। मनु ने एक गृहस्थ को यह व्यवस्था दी है कि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पत्नी को सहयोगी बनाए और विशेषकर धर्मानुष्ठान का दायित्व तो स्त्रियों को ही सौंपा है

प्रजनार्थं स्त्रियाः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः॥

(9-96)

अर्थात्गर्भधारण करके संतानों की उत्पत्ति करने के लिए स्त्रियों की रचना हुई है और संतानार्थ गर्भाधान करने के लिए पुरुषों की रचना हुई है। इस प्रकार से दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, अतः वेदों में साधारण से साधारण धर्मकार्य का अनुष्ठान भी पत्नी के साथ करने का विधान किया है।

यदि हम वैदिक काल के समाज दर्शन का अध्ययन करें तो हमें अनेकों सुखद अनुभूतियां होंगी। सर्वाधिक सुखद अनुभूति यह होगी कि वैदिक काल में स्त्रियों को वेदाध्ययन, यज्ञोपवीत, यज्ञ आदि के सभी अधिकार प्राप्त थे। वे ब्रह्मा के पद को सुशोभित करती थीं। उच्च शिक्षा प्राप्त करके मंत्रों के सत्य का साक्षात्कार करने वाली ऋषिकाएं बनती थीं। महर्षि मनु स्त्रियों को वे सभी सुविधाएं देने के पक्ष में थे जो पुरुषों को दी जाती हैं। कुछ परिस्थिति विशेष में मनु स्त्रियों को पुरुषों से अधिक सुविधाएं प्रदान करने की संस्तुति मनुस्मृति के माध्यम से करते हैं

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः।
स्नातकस्य च राज्ञश्च पंथा देयो वरस्य च॥

(2-138)

अर्थात्रथ, गाड़ी में बैठे हुए को, नब्बे वर्ष से अधिक आयु वाले को, रोगी को, बोझ उठाए हुए को, स्त्री को, स्नातक को, राजा को तथा दूल्हे को पहले रास्ता दे देना चाहिए।

सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिण गर्भिणाः स्त्रियः।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन॥

(3-114)

अर्थात्नवविवाहिता और अल्पवयस्क कन्याओं को, रोगियों को, गर्भवती स्त्रियों को, इन्हें अतिथियों से पहले ही बिना किसी संदेह के अर्थात् बड़े-छोटे को पहले-पीछे भोजन कराने का विचार किए बिना भोजन करा देना चाहिए।

महर्षि मनु का उद्देश्य समाज को सुखी, सुंदर और समृद्ध बनाना था। उनकी कभी व्यवस्थाएं इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए थीं। वे स्त्रियों को जहां स्वतंत्रता प्रदान करते हैं वहां उन्हें असुरक्षित अवसरों के प्रति भी सचेत करते हैं। मनु इस बात से चिंतित थे कि कहीं स्त्री समाज विरोधी तत्वों को ऐसा अवसर न दे दे वह शोषण का शिकार हो जाए, अतः वे स्त्रियों को अपने अभिभावकों से पृथक रहने का परामर्श नहीं देते है

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले॥

(5-149)

अर्थात्कोई भी स्त्री पिता, पति अथवा पुत्रों से अलग रहने की इच्छा न करे, क्योंकि इनसे अलग रहने पर यह आशंका रहती है कि कभी कोई ऐसी बात न हो जाए जिससे दोनोंपिता तथा पति के कुलों की निन्दा या बदनामी हो जाए। अभिप्राय यह है कि स्त्री को सर्वदा पुरुष की सहायता की अपेक्षा रखनी चाहिए, उसके बिना उसकी असुरक्षा की आशंका बनी रहती है। (9-5) में मनु स्त्रियों की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए पुरुषों को सचेत करते हैं कि थोड़े कुसंग के अवसरों से भी स्त्रियों की विशेषरूप

से रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि आरक्षित स्त्रियां दोनों कुलों-पति तथा पिता के कुलों को शोक संतप्त कर देती हैं। (9-6) सब वर्णों के इस श्रेष्ठ धर्म को देखते हुए दुर्बल पति भी स्त्री की रक्षा करने के लिए यत्न करते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुस्मृति की व्यवस्थाएं स्त्री-विरोधी नहीं हैं। उन्होंने जो भी व्यवस्थाएं दी हैं उनसे स्त्रियों की स्वतंत्रता, सुरक्षा और समृद्धि सुनिश्चित हो जाती हैं। कुछ विद्वानों जिनमें भीमराव अम्बेडकर प्रमुख हैं ने मनुस्मृति पर नारी विरोधी होने के जो आक्षेप किए हैं वे प्रमाणित नहीं होते। संभवतः उनका निर्णय उन प्रक्षिप्त श्लोकों पर आधारित है जिनमें नारी को दूसरे क्रम का नागरिक माना है और उनके शोषण की व्यवस्थाएं रच डाली हैं। मनु वैदिक ऋषि थे उनके द्वारा रचित मनुस्मृति में वे मान्यताएं हो ही नहीं सकतीं जो वेदों के विरुद्ध हों। वेदों में नारी को गरिमापूर्ण स्थान दिया है, अतः मनु की दृष्टि में भी नारी सम्मानित और पूज्यनीय हैं। मनुस्मृति में जो नारी-विरुद्ध मान्यताएं हैं, वे प्रक्षिप्त हैं और बाद में मनुस्मृति में समाहित कर दी गई हैं।

elibrary.thearyasamaj.org

प्रकृति-प्रदत्त वैयक्तिक भिन्नताएं और शूद्र

मनुस्मृति के मौलिक मन्तव्यों के आधार पर जब हम मनु का चरित्र-चित्रण करते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे एक अहिंसक ऋषि थे और क्षुद्र कीट पतंगों के मारने में भी प्रायश्चित का विधान प्रभावी करने पर बल देते थे। नारी की स्वतंत्रता और सुरक्षा के प्रति चिंतित थे और शूद्रों के कल्याण के प्रति संवेदनशील थे, लेकिन जब हम वर्तमान मनुस्मृति में मनु का चरित्र खोजते हैं तो विपरीत निर्णय पर पहुंचते हैं। शूद्रों के प्रति उनकी संवेदनहीनता उन्हें शूद्र विरोधी सिद्ध कर देती है और इस मत की स्थापना मनु के लिए समस्याएं खड़ी कर देती है।

तथाकथित मनु की शूद्रों के प्रति यह घृणा उसके ऋषित्व पर एक कलंक बन जाती है और इस कलंक को धोने के लिए उनके सब प्रयास विफल दिखाई देते हैं, क्योंकि इस मत के समर्थक मनुस्मृति से ऐसी मान्यताएं निकालकर उनके समक्ष खड़ी कर देते हैं, जिन्हें निष्प्रभावी करने के लिए मनु के पास तर्कों का अभाव दिखाई देता है, जैसे

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रांतमद्विजम्।
विनश्यत्यासु तत्कृत्सनं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम्॥ *(8-22)*

अर्थात्जो राज्य शूद्रों की अधिकता वाला, नास्तिकों से परिपूर्ण, द्विज वर्णों से रहित है वह शीघ्र ही अकाल और रोग से पीड़ित होकर नष्ट हो जाता है।

न शूद्र राज्ये निवसेन्न धार्मिकजनावृते।
न पाखण्डिगणाक्रांते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः॥

(4-61)

अर्थात्द्विज शूद्रों के राज्य में न रहें, अधार्मिक लोगों से घिरे राज्य में भी न रहें। पाखंडियों के समूहों से घिरे तथा शूद्र या चांडाल लोगों से घिरे या भरे गांव में भी न रहें।

जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद् ब्राह्मणब्रुवः।
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्र कथंचन॥

(8-20)

अर्थात्केवल जाति के आधार पर ही जीविका करने वाला, अर्थात् जो कर्मों से ब्राह्मण नहीं है, ऐसा अपने को ब्राह्मण कहने वाला व्यक्ति चाहे राजा का न्यायकर्त्ता हो सकता है, किंतु शूद्र कभी भी और किसी अवस्था में भी न्याय कर्त्ता नहीं हो सकता।

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम्।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः॥

(8-21)

अर्थात्जिस राजा के यहां शूद्र व्यक्ति न्याय का विचार करता है उसका वह राज्य उसके देखते-देखते कीचड़ में फंसी गौ के समान दुःखी होता है।

उपरोक्त मान्यताओं को देखते हुए वह कौन नहीं होगा, जो इस निष्कर्ष पर न पहुंच जाए कि मनु वास्तव में ही शूद्रों से घृणा करते हैं, लेकिन यह स्थापना उथली विचारधाराओं में एक भ्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जब तक हम शूद्रों को परिभाषित नहीं कर देंगे तब तक मनु के प्रति न्याय नहीं कर पाएंगे। हम इन श्लोकों को प्रक्षिप्त कहकर मनु की गरिमा को बचाने का प्रयास करने में सफल हो सकते हैं, लेकिन यह समस्या से बचाव का कोई सही रास्ता नहीं है, बल्कि समस्या को स्वसृजित करके समस्या

elibrary.thinkvasana.org

के अस्तित्व को समाप्त कर देना है, लेकिन इस तरह से समस्या समाप्त नहीं हो सकती। हमें समस्या को वास्तविक मानकर मनु का चरित्र-चित्रण करना है।

एक ऐसा ऋषि जो मानव के लिए, समाज के लिए और राष्ट्र के लिए संविधान का निर्माण करता है, उसके मूल में उसका समाज या राष्ट्र के कल्याण का उद्देश्य है। वह समाज को सुखी और समृद्धशाली देखना चाहता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही मनु ने वर्ण व्यवस्था का कार्यान्वयन किया है। इसी कार्यान्वयन में शूद्र एक अस्तित्वमय कड़ी है, जिसके बिना सुखी और समृद्धशाली समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। जिस प्रकार से समाज के अस्तित्व के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का योगदान आवश्यक है, शूद्रों का उससे कम मानना एक बहुत बड़ी भूल का शिकार होना है। क्या शूद्रों को उन कार्यों के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता जिसमें तार्किक विश्लेषण करने की उच्च बौद्धिक क्षमता की अपेक्षा हो? इसके उत्तर के लिए पहले शूद्रों को परिभाषित करना समीचीन होगा।

शूद्र

शूद्र शारीरिक श्रम द्वारा द्विज-वर्ण की सेवा करने वाला वर्ण है। यह वर्ण मानसिक श्रम से दूर रहता है या फिर मानसिक श्रम के योग्य नहीं होता। मानसिक श्रम के लिए अक्षम रहने में कुछ अंशों तक वह स्वयं भी दोषी है, लेकिन कुछ अंशों तक प्रकृति भी दोषी है। प्रकृति की ओर से सभी बच्चे समान मानसिकता के साथ उत्पन्न नहीं होते। हर बच्चे में व्यक्तिगत भिन्नता होती है। यह भिन्नता शारीरिक तो होती ही है बौद्धिक भी होती है। कुछ आधुनिक मानव शास्त्रों ने किसी बच्चे की मस्तिष्क की रचना को भी बच्चे की वैयक्तिक भिन्न का कारण माना है और ऐसी भिन्नता का दायित्व प्रकृति पर जाता है, जिसके लिए वह बच्चा किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है। आधुनिक अपराध शास्त्र में कुछ समाज शास्त्रियों ने पेशेवर अपराधियों की आपराधिक प्रवृत्ति के लिए उसके मस्तिष्क की रचना को उत्तरदायी माना है। दो बच्चों में ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता समान नहीं हो सकती। यह उनके ज्ञान प्राप्त करने के प्रयास पर कम और

प्रकृतिदत्त क्षमताओं पर अधिक निर्भर करती हैं, अतः प्रकृति की ओर से ही कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जो मानसिक श्रम के योग्य नहीं होते। यदि हम शिक्षा शास्त्र की भाषा में कहें तो प्रकृति की ओर से ही कुछ बच्चों का ज्ञान ग्रहियता का गुणांक शून्य से पच्चीस के मध्य होता है। इस आधार पर ये बच्चे बौद्धिक कार्यों के उपयुक्त नहीं होते, अतः ऐसे बच्चे न प्रशासनिक सेवा में जा सकते और न ही न्यायिक सेवा में। उनका वैज्ञानिक या चिकित्सक बनना तो बहुत दूर की बात है। मनु ऐसे ही बच्चों को शूद्रों की श्रेणी में रखते हैं।

मनु के सामने एक समाज है, जिसे वह सुखी और समृद्धशाली देखना चाहता है। उसके समक्ष शूद्र हैं जिन्हें वह समाज के लिए उपयोगी बनाना चाहता है तो उनके लिए वह किस काम की संस्तुति करेगा? यदि यही प्रश्न मनु विरोधियों के समक्ष रखा जाए तो उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी? वे उनके लिए किस कार्य की संस्तुति करेंगे? क्या उन्हें वे अध्यापक, वैज्ञानिक, सेनानायक बना सकेंगे? यदि उन्होंने ये शीर्ष कार्य सौंप दिए तो क्या वह राष्ट्र उन्नति कर सकेगा? क्या विद्वान लोग उस राष्ट्र में रह कर सुख प्राप्त कर सकेंगे? क्या वह राष्ट्र शीघ्र अवनति को प्राप्त नहीं हो जाएगा? यदि मनु सामाजिक समृद्धि के लिए ऐसे व्यक्तियों को उनकी क्षमता के अनुसार कार्य संपन्न कराने की व्यवस्था देते हैं तो वे कहां तक दोषी हैं? उन्हें किस स्तर तक शूद्र विरोधी सिद्ध किया जा सकता है?

मनु के विरुद्ध हमारी भावनाओं के उमड़ने का और उन्हें शूद्र विरोधी सिद्ध करने के मूल में वर्ण और जाति के अंतर को न समझ पाना भी है। मनु को वर्ण व्यवस्था कर्मों पर आधारित है, जन्म पर नहीं। कर्म पर आधारित वर्ग विभाजन वर्ण कहलाता है और जन्म पर आधारित विभाजन जाति कहलाता है। मनु ने जाति के आधार पर नहीं, बल्कि वर्ण के आधार पर समाज को वर्गान्तरित किया है।

मनु द्वारा वर्गान्तरित वर्ण बंद वर्ग नहीं हैं, बल्कि ऐसे वर्ग हैं जिनमें प्रवेश और निकास द्वार हैं। उसमें कोई कभी भी प्रवेश कर सकता है और निष्क्रमण भी कर सकता है। मनु के शूद्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण में जन्में वे व्यक्ति भी सम्मिलत हैं जो अपनी अकर्मण्यता या किसी अन्य

कारण से अपने वर्णों के निर्धारित कार्य करने की क्षमता का ह्रास कर बैठे हैं। इस व्यवस्था को मनुस्मृति ही पुष्ट कर रही है

शूद्रों ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम।
क्षत्रियात् जातमेवं तु विद्यात् वैश्यात् तथैव च॥

(10-65)

अर्थात्ब्राह्मण वर्ण की योग्यता प्राप्त करके शूद्र ब्राह्मण बन सकता है। कर्मों के त्याग से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य के कुल में उत्पन्न व्यक्ति का भी वर्ण परिवर्तन हो जाता है।

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्ययुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥

(9-335)

अर्थात्शूद्र-पवित्र शरीर एवं मन से अपने से उत्कृष्ट वर्णवालों की सेवा करने वाला, मधुरभाषी, अहंकार से रहित, सदा ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की सेवा में संलग्न शूद्र भी उत्तम वर्ण को प्राप्त कर लेता है।

मनुस्मृति में और भी अनेकों श्लोक हैं, जो वर्ण परिवर्तन का विवरण प्रस्तुत करके यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि मनु की वर्णव्यवस्था बंद वर्ग नहीं थी। उनके द्वारा वर्गान्तरित ब्राह्मणवर्ण में वे शूद्र भी सम्मिलित थे जिन्होंने अपने उत्तम कर्मों द्वारा अपना शूद्र वर्ण त्याग दिया था और शूद्र वर्ण में वे द्विज भी सम्मिलित थे जिन्होंने अपने निम्न कर्मों द्वारा अपने-अपने वर्णों में रहने की पात्रता खो दी थी।

डॉ. अम्बेडकर इस यथार्थ से परिचित थे। वे शूद्रों को आर्य मानते थे और कर्म आधिरित वर्णों को अनुचित नहीं मानते थे तथा यह भी स्वीकार करते थे कि मनु कि वर्ण-व्यवस्था कर्म पर आधारित थी न कि जन्म पर।

मनु की वर्णव्यवस्था को आंशिक रूप से ही समझकर और उसे जाति प्रथा का रूप देकर जो व्यक्ति मनु पर समाज को जातियों में विभक्त करने का आरोप लगाते हैं उन्हें यह जानकर विस्मय होगा कि आधुनिक युग में भी यह वर्णव्यवस्था राष्ट्रों की उन्नति में सहायक हो रही है। आज का

समाज भी चार वर्णों में बंटा हुआ है और आज भी शूद्रों का अस्तित्व है। यदि आज के शूद्रों में हरिजनों और अन्य पिछड़ी जातियों को सम्मिलित कर लिया जाए तो यह मनु की व्यवस्था के विरुद्ध होगा। ये वर्ण नहीं है बल्कि जातियां है, जो मनु-युग के बाद अस्तित्व में आई हैं। मनु के बाद शूद्र के वर्ण को बंद कर दिया गया। उसके प्रवेश और निकास द्वारों को हटाकर वर्णों के अंतः परिवर्तन को बाधित कर दिया गया, लेकिन इसके लिए मनु को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

मनु पर आक्षेप है कि उन्होंने अन्य वर्णों की तुलना में ब्राह्मण वर्ण को अधिक सुविधाएं दी हैं, लेकिन क्या आज के युग में ऐसा नहीं हो रहा है? एक अध्यापक, वैज्ञानिक, साहित्यकार आदि को एक श्रमकार मजदूर की तुलना में अधिक मानदेय दिया जाता है। इसके लिए किस मनु को उत्तरदायी ठहराया जाए? हम मनु के ऊपर इन आरोपों से यह अनुभव करते हैं कि मनु के साथ न्याय नहीं हो पाया है, लेकिन हम इस सत्य को भी स्वीकार करते हैं कि मनु युग के बाद जब ब्राह्मण वर्ण ब्राह्मण जाति में परिवर्तित हो गया तो स्वार्थी ब्राह्मणों ने अपना स्वार्थ साधने के लिए कुछ ऐसे घृणित नियम बना दिए, जिनसे अन्य लोगों को विशेषकर दलित वर्ग को अपमानित होना पड़ा। जैसे दक्षिण में ब्राह्मणों को अधिकार हो गया था कि वह दलित की स्त्री से संसर्ग कर सकेगा और यदि वह स्त्री इसका विरोध करेगी तो वह पाप कर्म करेगी। दतिल की स्त्रियों को पाप-पुन्य का भय दिखाकर ब्राह्मणों ने उनका यौन शोषण किया।

इस संदर्भ में दाल्म्य ऋषि की कथा है कि उसने किसी राजा से कहा यदि अमुक पाप से बचना चाहते हो तो तुम्हारी पत्नी को किसी ब्राह्मण के साथ संसर्ग करना चाहिए। ऐसे तथाकथित ऋषि ने निश्चय ही समाज को पतन की ओर धकेला है, लेकिन मनु की व्यवस्था मे ऐसे ऋषि दंड के अधिकारी हैं। ऐसे ही तथाकथित ऋषियों और ब्राह्मण जाति ने मनु की वर्ण-व्यवस्था को विफल किया है और मुन को एक खलनायक के रूप में समाज के मध्य खड़ा कर दिया है।

क्या वर्णव्यवस्था के जनक राजर्षि मनु थे?

क्या वर्ण-व्यवस्था के जनक राजर्षि मनु थे? इस प्रश्न का उत्तर खोजना कठिन नहीं है। इसका उत्तर उस महापुरुष ने अपने ग्रंथ में दिया है जिसने सर्वाधिक मनु के ऊपर कीचड़ उछाला है। उसकी अमर रचना के विरुद्ध विष उगला है और अपने अनुयायियों को उसे अग्नि सात करने के लिए प्रोत्साहित किया है। वे हैं भारतीय संविधान के निर्माण में अतुल्य योगदान करने वाले डॉ. अम्बेडकर। पहले इन्हीं के विचार जानना युक्तियुक्त रहेगा।

यहां इस बात का उल्लेख करना समीचीन लगता है कि मनुस्मृति के प्रति डॉ. अम्बेडकर की प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। अम्बेडकर ने वैदिक ग्रंथों का गहन अध्ययन नहीं किया था। उनका अध्ययन पाश्चात्य इतिहास वेत्ताओं और वैदिक साहित्य के पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अंग्रेजी में अनूदित पुस्तकों पर आधारित था। मैक्समूलर जैसे ऋषि प्रवृत्ति के पाश्चात्य विज्ञान को यदि छोड़ दें तो किसी भी पाश्चात्य विद्वान ने वैदिक साहित्य का अध्ययन श्रद्धा के साथ कुछ ज्ञान खोजने के उद्देश्य से नहीं किया, बल्कि उसमें कुछ विसंगतियां को खोजने के लिए किया, जिसकी तुलना में वे अपने साहित्य को और धर्मशास्त्रों को वैदिक ग्रंथों से महान सिद्ध कर सकें। इस भावना के अधीन पाश्चात्य लेखकों ने अनूदित ग्रंथों में जो मत विकसित किया अम्बेडकर ने उसे ही सत्य मान लिया और उसके आधार पर मनुस्मृति को अपठनीय धर्मशास्त्र घोषित कर दिया। यह एक स्वाभाविक मानसिक स्थिति की प्रतिक्रिया है कि यदि किसी ग्रंथ में मानवीय मूल्यों का विखंडन किया गया है, समाज को अनेक जातियों में विभाजित कर दिया है और अंतिम

जाति को शूद्र का नाम देकर उसके शोषण की व्यवस्थाएं निर्मित कर दी गई हों तो उस ग्रंथ को कौन सम्मान दे सकेगा?

डॉ. अम्बेडकर से आशा थी कि वे अपने ग्रंथ 'हिंदुत्व का दर्शन' में मनु को वर्णव्यवस्था का जनक सिद्ध कर देंगे, लेकिन यह एक विस्मयकारी घटना ही कही जाएगी की उन्होंने मनु को वर्ण-व्यवस्था का जनक नहीं माना है। उन्होंने कहा"एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति-विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जाति प्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था, उसने इसे दर्शन का रूप दिया।"

डॉ. अम्बेडकर आगे लिखते हैं"कदाचित मनु जाति के निर्माण के लिए उत्तरदायी न हों, परंतु मनु ने वर्ण की पवित्रता का उपदेश किया है और वर्ण जाति की जननी है अतः इस अर्थ में मनु जाति-व्यवस्था का लेखक न भी हो, लेकिन पूर्वज होने का उस पर निश्चय ही आरोप लगाया जा सकता है।" यह निर्विवाद है कि वेदों में चातुर्वण्य के सिद्धांत की रचना की है, जिसे पुरुष सूक्त के नाम से जाना जाता है।

डॉ. अम्बेडकर के इस चिंतन की प्रतिक्रिया में समकालीन मनुस्मृति के भाष्यकार डॉ. सुरेन्द्र कुमार द्वारा संपादित पुस्तक 'राजर्षि मनु और उसकी मनुस्मृति' में मनुस्मृति के समकालीन समीक्षक डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल ने अपने लेख 'मनु की दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्रों' में निम्नलिखित प्रतिक्रिया दी है

डॉ. अम्बेडकर मानते हैं कि

1. वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति वेदों से हुई है।
2. मनु वर्तमान जन्मना जाति-व्यवस्था का निर्माता नहीं है।

अब समझने की बात यह है कि जब वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति वेदों से हुई है तो मनु वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी कैसे हो सकता है? उन्होंने उस व्यवस्था को पवित्रतम बनाए रखने के लिए बल दिया जो कोई अपराध नहीं है और जब मनु वर्तमान जन्मना जाति-व्यवस्था के निर्माता नहीं है, तो उसके लिए उन्हें दोषी ठहराना कहां तक उचित है? यह अनुचित ही नहीं अन्यायपूर्ण भी है। इस प्रकार मनु वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था

दोनों के निर्माता के आरोप से मुक्त हो जाते हैं। अब रहा मनु का जाति-व्यवस्था के पूर्वज होने का आरोप। डॉ. अम्बेडकर स्वयं जातिवाद के कट्टर विरोधी थे, जो उनकी अध्यक्षता में संविधान सभा द्वारा रचित भारत के संविधान से सुस्पष्ट है, मगर उनके बाद के सांसदों ने संविधान में अब तक 80 संसोधन किए हैं तो क्या अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़ी जातियों को सरकारी नौकरियों तथा शिक्षा संस्थाओं में जाति-आधारित आरक्षण और उससे जुड़ी अनेक धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं के लिए डॉ. अम्बेडकर को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है? क्या हम उनके धवल चरित्र और राष्ट्रीय निष्ठा पर संदेह करके जाति-द्वेष और जाति-आधारित सामाजिक विघटन के कलंक को उनके माथे पर थोप सकते हैं? यदि आज का जाति आधारित आरक्षण का स्वरूप आगे चलकर और भी अधिक विभत्स, विघटनकारी, द्वेषपूर्ण और निकृष्ट हो जाए तो क्या इसके लिए डॉ. अम्बेडकर और उनकी संविधान सभा को दोषी ठहराया जाएगा?

इसी प्रकार वर्तमान जन्मना जाति-व्यवस्था मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था से विरोधी व्यवस्था है, जो कि हिंदू धर्म की महानतम विकृति है। साथ ही जब डॉ. अम्बेडकर मानते हैं कि अकेला मनु न तो जाति व्यवस्था को बना सकता है और न लागू कर सकता था, तो फिर हिंदू समाज में कालांतर में हुए इस विकृति के लिए भला मनु कैसे उत्तरदायी हो सकते हैं?

कुछ विद्वानों का मत है कि वर्तमान में जो मनुस्मृति हमारे समक्ष है वह मनु द्वारा रचित मनुस्मृति नहीं है। यदि हम इस मत पर विश्वास न भी करें तो इस तथ्य पर विश्वास करना ही होगा कि हमारे समक्ष जो मनुस्मृति है यह मौलिक स्मृति नहीं है। इसका प्रमाण दो प्रसिद्ध भाष्यकारों द्वारा किए गए भाष्य में मनुस्मृति के श्लोकों की संख्या में अंतर का होना है। भाष्यकार मेघातिथि (9वीं शताब्दी) की तुलना में भाष्यकार कुल्लुक भट्ट (12वीं शताब्दी) के संस्करण में एक सौ सत्तर श्लोक अधिक हैं। तीन शताब्दी में एक सौ सत्तर श्लोक मनुस्मृति में प्रविष्ट करा दिए गए तो मनुस्मृति के रचना काल से कुल्लुक भट्ट के काल तक हजारों श्लोक प्रविष्ट हो चुके होंगे, फिर इस मनुस्मृति को मौलिक कैसे कहा जा सकता है? मनुस्मृति के इस परिवर्धन के पीछे परिवर्धन कत्ताओं का उद्देश्य कुछ

भी रहा है, लेकिन उनकी इस प्रवृत्ति से मनुस्मृति की मौलिकता प्रभावित तो हो ही गई।

यदि यह भी मान लिया जाए कि मेधातिथि के काल तक आते-आते मनुस्मृति मौलिक थी तो आगे मनुस्मृति की यात्रा संदिग्ध हो जाती है और इस संदेह को मेधातिथि के भाष्य से ही बल मिलता है। मेधातिथि के भाष्य के अंत में एक श्लोक मिलता है कि मनुस्मृति और उसका मेधातिथि भाष्य लुप्तप्रायः था। उसको विभिन्न संस्करणों की सहायता से महारण राजा के पुत्र राजा सदन ने पुनः संकलित कराया। इस स्थिति में क्या मनुस्मृति की मौलिकता प्रभावित नहीं हुई होगी? संभवतः इस घटना से मनु की मान्यताएं इस संकलित मनुस्मृति में अपने परिवर्तित रूप में ही पुनर्स्थापित हो सकी होंगी। इस परिवर्तित मनुस्मृति का स्वरूप तो वर्तमान तक कुछ और परिवर्तन के साथ आ चुका है, लेकिन इस परिवर्तन से पूर्व मेधातिथि तक पहुंची मनुस्मृति का स्वरूप कैसा था इसका अनुमान लगाना भी कठिन है। इसमें वर्ण-व्यवस्था थी या नहीं थी यदि थी तो उसका स्वरूप कैसा था यह अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता।

यह संभावना हो सकती है कि मनु ने अपनी मौलिक मनुस्मृति में वर्ण-व्यवस्था का विधान लिखा हो, लेकिन यह सत्य है कि मनुस्मृति की रचना से पूर्व ही वेदों में वर्ण-व्यवस्था का प्रावधान मिलता है। वेद के पुरुष-सूक्त में वर्ण-व्यवस्था का आलंकारिक वर्णन है। यह वर्णन मनु ने वहां से मनुस्मृति में प्रतिस्थापित किया है

यत्पुरुष व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखम् किमस्यसीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते॥

(यजु. 31-10)

अर्थात्पुरुष उसे कहते हैं कि जो सर्वशक्तिमान ईश्वर कहता है, जिसके सामर्थ्य का अनेक प्रकार से प्रतिपादन करते हैं, क्योंकि उसमें चित्र-विचित्र बहुत प्रकार का सामर्थ्य है, अनेक कल्पनाओं से जिसका कथन करते हैं। इस पुरुष के मुख अर्थात् मुख्य गुणों से इस संसार में क्या उत्पन्न हुआ है? बल वीर्य, शूरता और युद्ध आदि विद्यागुणों से किसकी उत्पत्ति

हुई है? व्यापार आदि मध्यम गुणों से किसकी उत्पत्ति होती है? इन चारों प्रश्नों के उत्तर ये हैं

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत॥

(यजु. 31-11)

अर्थातइस पुरुष की आज्ञा के अनुसार जो विद्या, सत्य भाषण आदि उत्तम और श्रेष्ठकर्मों से ब्रह्मणवर्ण उत्पन्न होता है। वह मुख्य कर्म और गुणों से सहित होने से मनुष्यों में उत्तम कहलाता है और ईश्वर ने बल-पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणों से युक्त क्षत्रियवर्ण को उत्पन्न किया है, खेती, व्यापार और सब देशों की भावनाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यम गुणों से वैश्य वर्ण सिद्ध होता है। जैसे पग सबसे नीचे का अंग है वैसे मूर्खता नीच गुणों से शूद्रवर्ण सिद्ध होता है। (यहां नीच उच्च का विलोम है।)

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए मनुस्मृति के भाष्यकार कुल्लुक भट्ट ने एक अन्य कल्पना की हैब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण को उत्पन्न किया है, बाहों से क्षत्रिय को, जंघाओं से वैश्य को और पैरों से शूद्र को उत्पन्न किया है, लेकिन न महर्षि दयानन्द ने और न ही समकालीन मनुस्मृति के भाष्यकार डॉ. सुरेन्द्र कुमार ने कुल्लुक भट्ट के इस व्याख्या को स्वीकार किया है।

महर्षि मनु वर्ण-व्यवस्था के जनक नहीं हैं अपनी इस मान्यता को कुछ समकालीन चिंतकों ने कुछ विशेष प्रकार के तर्कों से सिद्ध किया है। यद्यपि ये तर्क अत्याधुनिक खोजों के आधार पर विश्वसनीय नहीं लगते, परंतु इस मत के पक्ष में डॉ. उर्मिला रुस्तगी जैसी मनोवृत्ति वाली कुछ ऐसी प्रतिभाएं रही हैं जिनकी चिंतन भूमि भारतीय संस्कृति की मान्यताओं के अन्तर्गत ही है। डॉ. रुस्तगी मनुस्मृति की समकालीन समीक्षक एवं भाष्यकार हैं, लेकिन उन्होंने अन्य आधुनिक समीक्षकों की तुलना में अपने चिंतन को भिन्न दिशा देते हुए यह स्थापना की है कि मनुस्मृति का रचना काल 200 ई. पू. से 200 ई. तक रहा है। यद्यपि इनका यह विश्लेषण पाश्चात्य चिंतन-प्रवृत्ति का समर्थ प्रतीत होता है, परंतु डॉ. रुस्तगी अकेली नहीं है

जो यह भिन्न विश्लेषण प्रस्तुत कर रही हैं, बल्कि काशी प्रसाद जायसवाल ऐसा ही विश्लेषण प्रस्तुत कर चुके हैं।

श्री जायसवाल ने अपनी इस मान्यता के पक्ष में एक ऐतिहासिक घटना को साक्ष्य बनाया है। 184 ई. पूर्व मौर्यों के ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने तत्कालीन मौर्य राजा वृहद्रथ की हत्या कर मौर्य सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया था। पुष्यमित्र शुंग के शासन संभालते ही पुनः भारतीय समाज पर ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित हो गया था। शुंगसेनापति के नेतृत्व में ब्राह्मणों की इस प्रतिक्रिया को काशी प्रसाद जायसवाल ने 'रूढ़िवादी प्रतिक्रांति' कहा है और मनुस्मृति को इस क्रांति की देन कहा है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार के प्रकाशन विभाग से प्रकाशित ग्रंथ 'भारत और मानव संस्कृति खंड प्रथम में ग्रंथकार विशम्भर नाथ पांडे ने 'रूढ़िवादी प्रतिक्रांति' नामक अध्याय में इस क्रांति का वर्णन किया है।

काशीराम जायसवाल के अनुसार यह धर्मशास्त्र पुष्यमित्र के शासन काल में लिखा है और इसकी विषय वस्तु को दृष्टिगत करते हुए यह सहज ही में स्पष्ट हो जाता कि इस धर्मशास्त्र का उद्देश्य पुष्यमित्र के विश्वासघात का नैतिक समर्थन था।

तत्कालीन ब्राह्मण मौर्य शासन को शूद्रों का शासन मानते थे और इस व्यवस्था को वेद विरुद्ध असंगत व्यवस्था के रूप में देखते थे। वेदों की वर्ण व्यवस्था के अनुसार समाज का वर्ण विभाजन ही ब्राह्मणों को मान्य था। इस वर्ण-व्यवस्था के अनुसार शासन करने का अधिकार केवल क्षत्रियों को है। यदि कोई क्षत्रिय अपने क्षत्रियत्व को त्याग दे तो उसके पास शासन करने का अधिकार नहीं बच पाता। मौर्यवंशीय सम्राट अशोक ने कलिंग विजय के बाद क्षत्रियत्व त्याग दिया था। उसके वंशज वृहद्रथ ने भी अपने अग्रजों के पदचिन्हों पर चलकर क्षत्रियत्व त्यागा हुआ था। उसके शासन काल में सेना इतनी नहीं थी जितने बौद्ध भिक्षु थे। भिक्षुओं के पास किसी भी समस्या का समाधान सैनिक-समाधान नहीं था, बल्कि वे महात्मा बुद्ध के अनुयाई होने के कारण हर समस्या को अहिंसा और करुणा से सुलझाना पसंद करते थे। वृहद्रथ का व्यवहार भी बौद्ध भिक्षुओं जैसा था।

वृहद्रथ की इस शासन-शैली से ब्राह्मण रुष्ट हो चले थे और उन्होंने वृहद्रथ को एक शूद्र मान लिया था। उनका ऐसा मानना भी वर्ण-व्यवस्था के विधानों पर आधारित था। वर्णव्यवस्था में यह विधान है कि यदि कोई व्यक्ति अपने वर्ण के अनुसार अपना आचरण स्थिर नहीं कर पाता तो वह स्वतः ही उस वर्ण में स्थानान्तरित हो जाएगा जिस वर्ण के अनुकूल उसका आचरण स्थिर हो गया हो। इसी विधान के अनुसार ब्राह्मणों ने वृहद्रथ को शूद्र घोषित कर दिया था और ब्राह्मणों को शूद्रों के शासन में रहने के लिए प्रतिबंधित कर दिया था, जिसकी पुष्टि निम्नलिखित श्लोक द्वारा काशीराम जायसवाल ने की है

न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते।
न पाखडिंगणाक्रांते नोप सृष्टेडन्त्यजैर्नृभिः॥

(मनु. 4-61)

अर्थात्द्विज शूद्र के राज्य में न रहें। अधार्मिक लोगों से घिरे राज्य में भी न रहें। पाखंडियों के समूहों से घिरे, शूद्र या चाण्डाल से घिरे या भरे गांव में भी न रहें।

इस श्लोक द्वारा श्री जायसवाल ने यह सिद्ध करना चाहा है कि वृहद्रथ को शूद्र मानकर उसके प्रति समाज में घृणा फैलाने के लिए इस श्लोक को मनुस्मृति में स्थान दिया गया है, लेकिन ब्राह्मणों को यहां तक भी संतोष नहीं हुआ। उनके सौभाग्य से वृहद्रथ के शासन काल में एक घटना घट गई। बलख के यूनानी राजा मेनांदर ने भारत पर चढ़ाई करके अवध तक के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इस आक्रमण को रोकने के लिए वृहद्रथ के पास न सेना थी और न आयुद्ध, केवल आयुद्ध विहीन भिक्षुओं के संघ थे, जो अहिंसा से ही सब समस्याओं का समाधान खोजने के पक्ष में थे।

वृहद्रथ की इस विफलता का ब्राह्मणों ने मनोवैज्ञानिक लाभ उठाया। वे समाज को यह दिखाने में सफल हो गए कि शूद्र न तो शासन कर सकते है और न ही बाह्य आक्रमणकारियों से देश की रक्षा।

अतः ब्राह्मणों ने शूद्र राजा को मारने का मनुस्मृति से नैतिक समर्थन प्राप्त कर लिया जिसके लिए यह श्लोक इस धर्मशास्त्र में लिख डाला गया

तं राजा प्रणयन्सस्यक् त्रिवर्गेणभिवर्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रोदण्डेनैव निहन्यते॥

(7-27)

अर्थात्जो दंड को राजा अच्छे प्रकार से चलाता है, वह धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लंपट, टेढ़ा, ईर्ष्या करने वाला क्षुद्र नीच बुद्धि न्यायधीश राजा होता है वह दंड से ही मारा जाता है।

श्री जायसवाल ने उपरोक्त विवरण और नारद स्मृति के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वर्तमान मनुस्मृति शुंग-शासनकाल में लिखी गई है और इसका रचनाकार सुमति भार्गव नामक व्यक्ति था।

यदि काशीराम-जायसवाल की मान्यताओं को सही मानते हुए मनुस्मृति का रचनाकाल शुंगकाल मान लिया जाए तो मनु वर्ण-व्यवस्था के जन्मदाता के आक्षेप से स्वतः ही बच जाते हैं, क्योंकि वर्ण-व्यवस्था शुंगकाल से ही पूर्व वैदिक काल से समाज में व्याप्त है और दूसरे जब वर्तमान मनुस्मृति के रचयिता मनु हैं ही नहीं तो फिर उन पर वर्ण-व्यवस्था द्वारा समाज को वर्गों में विभाजित करने का आक्षेप स्वतः ही निराधार हो जाता है।

समकालीन समीक्षक और मनुस्मृति की भाष्यकार डॉ. रुस्तगी की मान्यता है कि मनुस्मृति शुंगकाल में ही लिखी गई है, लेकिन इसके लेखक मनु ही हैं। डॉ. रुस्तगी मानती हैं कि मनु पर वर्ण-व्यवस्था-संबंधित दोषों का आरोपण करना अनुचित है। इन नियमों के लिए मनु उत्तरदायी नहीं है, क्योंकि वह तो प्रचलित स्थितियों का लेखबद्ध करने वाला विद्वान है उन स्थितियों का निर्माता नहीं।

मनु और वर्ण-व्यवस्था

मनु के ऊपर समाज को जातियों में विभक्त करने के आक्षेप प्रायः लगते आए हैं। विगत सौ वर्षों से ये आक्षेप कुछ अधिक तीव्र हुए हैं। इस तीव्रता का आवेग इतना अधिक हुआ है कि मनु एक विशेष वर्ग की आलोचनाओं के केंद्र में स्थिर हो गए हैं और उस वर्ग की दृष्टि में अनास्था के पात्र बनकर रह गए हैं, लेकिन उस वर्ग से संबंधित कुछ विद्वान इन आरोपों से सहमत नहीं है। वे मनु को वर्ण-व्यवस्था का जनक नहीं मानते हैं। उन विद्वानों में भीमराव अम्बेडकर प्रमुख हैं जिन्होंने अपने निम्न उल्लेखित चिंतन द्वारा मनु को वर्ण-व्यवस्था के जनक के आक्षेप से मुक्त किया है

"एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति-विधान का निर्माण नहीं किया है और न वह ऐसा कर सकते थे। जाति-प्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था, इसलिए उसने इसे एक दर्शन का रूप दिया।" मनु के संबंध में की गई यह टिप्पणी डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रणीत ग्रंथ संपूर्ण वाङ्मय खंड1 के जातिप्रथा अध्याय में वर्णित है। उन्होंने अपनी यह टिप्पणी अपने गहन अध्ययन के आधार पर दी है और वर्ण-व्यवस्था के जनक के रूप में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त को उत्तरदायी माना है

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शुद्रो अजायत॥

(ऋण 10-90-12, यजु. 31-11)

ऋग्वेद की इससे पूर्व ऋचा (10-90-11) में प्रश्न किया गया है कि परम ब्राह्मणरूपी पुरुष कैसा है? इसके उत्तर में उपयुक्त मंत्र (10-90-12) मे कहा गया है कि वेदादि शास्त्रों एवं ईश्वर को जानने वाला मनुष्य ब्राह्मणरूप में इस पुरुष का मुख है, चल पराक्रमगुण-युक्त मनुष्य क्षत्रियरूप में इस पुरुष की बाहें है, खेती, व्यापार आदि करने वाला वैश्य-समुदाय इसका मध्यभाग है और श्रम-आदि करने वाला मनुष्य-समाज शूद्ररूप में इस विराट-पुरुष के पैर हैं।

यह परमेश्वर की शक्तियों का आलंकारिक वर्णन है। ऐसा ही आलंकारिक वर्णन शतपथ ब्राह्मण (2-1-4-12 से 13), महाभारत (आदिपर्व अ. 65, 66, 75, शांतिपूर्व अ. 208) वाल्मीकि रामायण (आयो. 110/3-6, अरण्य. 14), भागवत (3/12-4-5) और विष्णु पुराण (अ. 17) में किया गया है। मनु ने वेद के पुरुषसूक्त से ही वर्ण-व्यवस्था विकसित की है और निम्नलिखित श्लोक में पुरुषसूक्त की भांति ही वर्ण-व्यवस्था को दर्शाया है

लोकानाम् तु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्॥

(मनु. 1-31)

अर्थात्समाज की शांति, समृद्धि एवं प्रगति के लिए मुख, बाहु, जंघा और पैर के गुणों की तुलना के अनुसार क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण को निर्मित किया। अर्थातचातुर्वर्ण व्यवस्था का निर्माण किया।

वर्ण का अर्थ

'वर्ण' शब्द वेदों में अनेक बार आया है और अकेले ऋग्वेद में ही चौबीस मंत्रों में 'वर्ण' शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसका प्रसंगानुसार अर्थ हैरंग, रूप, अनिष्ट-निवारक, रश्मि, वर्णन-योग्य, क्रांति, प्रकाश, वर्ण करने योग्य, ब्राह्मणादि चारों वर्ण आदि। निरुक्त के वर्णो वृणोते (2-14)

सूत्र के अनुसार 'वर्ण वह है जिसका गुण कर्मानुसार वर्ण किया जाए।' स्वामी दयानंद ने इसकी व्याख्या में कहा है'जिसके जैसे गुण हों उसको

वैसा ही अधिकार देना वर्ण है। (ऋग्वेद भाष्य भूमिका) अतः जब कोई मनुष्य अपने गुण, कर्म, रुचि एवं क्षमता अनुसार अपनी जीविका चुनता है या वरण करता है, तो वह उसका वर्ण कहलाता है। किसी के वर्ण का उसके माता-पिता के वर्ण के अनुकूल होना आवश्यक नहीं है। प्राचीन काल की गुरुकुल पद्धति में वर्ण का निर्णय आचार्य करता था, क्योंकि उसे प्रत्येक छात्र की रुचि एवं योग्यता का ज्ञान रहता था।

मनु ने वेदों की मान्यता के अनुसार समाज को चार वर्णों में विभक्त किया है

1. ब्राह्मण
2. क्षत्रिय
3. वैश्य
4. शूद्र

ब्राह्मण : क्षत्रियो वैश्यस्ययो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्र नास्ति तु पंचमः॥

(मनु. 10-4)

मनु की समाज-व्यवस्था का आधार

मनु द्वारा प्रतिपादित समाज-व्यवस्था वेदों के साथ-साथ ब्राह्मण ग्रंथों, महाभारत, गीता आदि धर्मशास्त्रों पर भी आधारित है जो पूर्णतया व्यक्ति के गुण-कर्म स्वाभानुसार है। इस व्यवस्था को कर्मणा वर्ण-व्यवस्था कहा गया है। वह आज की तरह व्यक्ति के मां-बाप की जाति के आधार पर जन्मना जाति-व्यवस्था नहीं थी। मनु ने जन्मना जाति-व्यवस्था का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है।

कर्मणा व्यवस्था का मूल सिद्धांत हैव्यक्ति का उसके गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार अपनी जीविका साधन का चयन करना। मनु की कर्मणा-व्यवस्था स्थायी नहीं है अपितु गुण-कर्म-स्वभाव एवं रुचियां बदलने पर कर्मणा वर्ण-व्यवस्था परिवर्तित हो जाती है। पिता जिस व्यवसाय का चयन करता है यह आवश्यक नहीं है कि उसके पाल्य उसी व्यवसाय का चयन करें।

elibrary.aryamaj.org

यदि पिता की तुलना में पुत्र की रुचियों और क्षमताओं में परिवर्तन आ चुका है तो उसका वर्ण परिवर्तित हो सकता है। इस प्रकार वर्ण जाति की भांति एक बंद वर्ग नहीं है, बल्कि इसमें प्रवेश और निकास के द्वार सदैव खुले रहते हैं।

मनु की यह वर्ण-व्यवस्था मानव के मनोविज्ञान पर आधारित है। मानव समाज अपनी समृद्धि और प्रगति के लिए चार समितियों की अपेक्षा करता है। प्रथम-वह समिति जो समाज की शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान और आध्यात्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति कर सके। द्वितीय-समाज को आंतरिक बाह्य आपदाओं से सुरक्षा प्रदान कर सके। तृतीय-वह समिति जो समाज के भरण-पोषण, आर्थिक व भौतिक विकास के लिए उत्तरदायी हो। चतुर्थ-वह समिति जो समाज को धारण कर सके अर्थात् अपने श्रम से समाज का आश्रय-दाता बन सके। इन चारों समितियों को मनु ने क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम से प्रसिद्ध किया है।

भारतीय धर्मशास्त्रों ने इन्हें जाति नहीं माना है, लेकिन इतना जरूर है कि जिन लोगों की जीवनचर्या एक समान है वे एक समान जीवन-पद्धति के कारण एक अध्यारोपित जाति है, जो स्थायी नहीं है, बल्कि व्यक्ति के गुण-कर्म -स्वभाव के परिवर्तन के साथ इसमें परिवर्तन आ जाता है। शिक्षा इसमें महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। आज जो शूद्र का बेटा है कल वह शिक्षित होकर ब्राह्मण हो सकता है और जो ब्राह्मण का बेटा है वह अशिक्षित होकर शूद्र हो सकता है। आज की जन्मना जाति-व्यवस्था कर्मणा जाति-व्यवस्था के ठीक विपरीत है। यह पूर्णतया अवैदिक, अनुचित और आत्मघाती है। मनु इसका कहीं भी उल्लेख या समर्थन नहीं करते। मनु के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किन गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर वर्गीकृत किए गए हैं अब इन पर विचार करना समीचीन होगा।

ब्राह्मण

जैसा कि उपरोक्त उल्लेखों में स्पष्ट किया गया है कि मनुस्मृति से इतर भी वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख अनेकों ग्रंथों में मिलता है। वहां अलग-अलग वर्णों के गुण-कर्म भी उन ग्रंथों में दिखाए गए हैं। थोड़े बहुत शब्दान्तर

से सभी ग्रंथों के वर्णों की परिभाषाएं एक समान ही हैं। ब्राह्मण वर्ण की परिभाषा में कौन ग्रंथ क्या-क्या कहता है निम्न प्रकार से दर्शाया गया है

1. अष्टाध्यायी (4-2-59) के अनुसार वेदज्ञान के अध्ययन और परमेश्वर की उपासना में मग्न रहते हुए विद्या आदि उत्तम गुणों के धारण करने से व्यक्ति ब्राह्मण कहलाता है।

2. महाभारत (वन. 180-21) के अनुसार

सत्यं दानं क्षमाशीलम् मानुषस्य तयो धृतिः।
दृश्यंते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥

अर्थात्जिस व्यक्ति में सत्य, दान, क्षमाशीलता, तप और धैर्य है वही ब्राह्मण है।

3. गीता (18-42) के अनुसार जिस मनुष्य में शम, इन्द्रिय-दमन, पवित्रता शांति, धर्म में दृढ़ता, कोमलता, निरभिमान, ज्ञान-विज्ञान में रुचि एवं ईश्वर में विश्वास है वही ब्राह्मण है।

4. (ऋ. 7-56-8) के अनुसार जिसका तप शौच, दम, शम, ज्ञान-विज्ञान आदि बल निष्कलंक है। वह ब्राह्मण कहलाता है।

5. (ऋग. 10-71-8) के अनुसार जो मनुष्य चित्रवृत्ति से सूक्ष्म विषयों का विचार करते हैं, मन की चंचलता से बचकर संयम, इन्द्रिय-निग्रह कर समदृष्टि से अपनी जीविका चलाते हैं तथा बुद्धि-तर्क द्वारा ज्ञान का प्रचार करते हैं ब्राह्मण हैं।

6. महाभारत (शांति. 17-78) के अनुसार ब्राह्मण के लिए स्वाभाविक कर्म ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति एवं प्रचार करना तथा समाज की ज्ञान द्वारा समृद्धि करना है।

7. मनु के अनुसार

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्

(मनु. 1-88)

अर्थात्ब्राह्मणों के पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ, करना-कराना तथा दान देना और लेना ये छः कर्म हैं।

क्या मनु की दृष्टि में ब्राह्मण अधिक सम्मानित थे?

कुछ आधुनिक विद्वान मनु पर ब्राह्मणवादी होने का आरोप लगाते हैं और निम्नलिखित मनुस्मृति के श्लोकों को इसके प्रमाण में प्रस्तुत करते हैं

श्लोक (2-135) में मनु कहते हैंदश वर्ष के ब्राह्मण को और सौ वर्ष के क्षत्रिय को क्रमशः पिता और पुत्र समझना चाहिए, उनमें ब्राह्मण ही पिता है। (3-14) आपत्ति में पड़े हुए ब्राह्मण और क्षत्रिय को किसी भी विधान या अवस्था में शूद्रा को पत्नी बनाने का विधान नहीं है। (3-15) द्विजाति लोभ, मोह या काम में फंसकर हीन जाति की स्त्री से विवाह करके संतान सहित अपने कुलों को ही शीघ्र शूद्रता को प्राप्त कराते हैं। (3-17) शूद्रा स्त्री के साथ रमण करके ब्राह्मण पतित हो जाता है। उसमें सन्तान उत्पन्न करके तो अपने ब्राह्मणत्व से ही गिर जाता है। (3-110) ब्राह्मण के घर आए हुए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, मित्र, रिश्ते-नातेदार और गुरु भी अतिथि नहीं कहलाते। (4-223) विद्वान ब्राह्मण को चाहिए कि श्राद्ध के अनाधिकारी का पका अन्न न खाए, परंतु खाने के लिए कहीं से भी कुछ मिलने पर शूद्र से एक रात भोजन करने योग्य कच्चे अन्न को ही ले ले। (4-254) शूद्र की जैसी कुलशील की स्थिति हो और जैसी इच्छा हो तथा जिस प्रकार ब्राह्मण की सेवा करनी चाहे उसी प्रकार अपने को निवेदन कर दे अर्थात् सब बातें स्पष्ट करके स्वयं को सेवा के लिए अर्पण कर दे।

(5-83) ब्राह्मण मृतक अशुद्धि में दस दिन में शुद्ध होता है, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पंद्रह दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है। (5-104) अपने वर्ण या वंश वालों के होते हुए मृत ब्राह्मण को शूद्रों से उठवाकर न ले जाए, क्योंकि शूद्र के स्पर्श से दूषित हुई वह शरीर की आहूति स्वर्ग में पहुंचने वाली नहीं होती। (8-142) ब्याज लेने वाला वर्णों के क्रम से अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-क्रम के अनुसार क्रमशः दो रुपया सैकड़ा, तीन रुपया सैकड़ा, चार रुपया सैकड़ा और पांच रुपया सैकड़ा मासिक ब्याज ले। (8-267) ब्राह्मण को कठोर या दुष्ट वचन कहने पर क्षत्रिय सौ

पण दंड का भागी होता है, वैश्य डेढ़ सौ अथवा दो सौ पण और शूद्र शारीरिक दंड का भागी होता है। (8-270) यदि शूद्र द्विज जातियों को अत्यंत कठोर या दुष्टवाणी में आक्षेप करे, तो उसकी जीभ को काट देना चाहिए, क्योंकि वह शूद्र नीच से उत्पन्न है। (8-272) नाम और जाति का कथन करते हुए यदि शूद्र इन द्विजों को द्रोहपूर्वक कठोर वचन कहे तो जलती हुई दस अंगुल लम्बी लोहे की शलाका इस शूद्र के मुख में डाल देनी चाहिए। (8-377) यदि क्षत्रिय, वैश्य सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ गमन करे तो उन्हें शूद्र के समान दंडित करे अथवा तिनकों की आग में जला दे। (8-379) ब्राह्मण का मुण्डन करा देना ही प्राणवध दंड कहा जाता है, परंतु ब्राह्मण से भिन्न अन्य वर्णवालों को तो प्राणवध ही दंड होना होना चाहिए। (8-380) सब पापों में स्थित रहते हुए भी ब्राह्मण को कदापि प्राणवध का दण्ड न दे, बस इसे समस्त धन सहित शारीरिक हानि किए बिना देश से बाहर निकाल दे। (8-381) ब्राह्मणवध से अधिक पाप धरती पर दूसरा कोई नहीं है, अतः ब्राह्मणवध की बात राजा मन में भी न सोचे। (8-417) ब्राह्म निस्संदेह शूद्र से उसके धन को ले ले, क्योंकि शूद्र का अपना धन कुछ भी नहीं है, जो भी कुछ उसके पास है वह उसके स्वामी का है।

(9-150) ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र के लिए खेती करने वाले बैल, सवारी, आभूषण, खेती और घर में उद्धार धन के रूप में देने चाहिए और सबसे प्रधान होने के कारण संपूर्णधन में से एक भाग देने चाहिए। (9-178) ब्राह्मण शूद्रा में कामवश होकर जिस पुत्र को उत्पन्न करता है वह जीते हुए भी मरे हुए के समान है, इसलिए उसे पारशव कहा जाता है। (9-229) यदि राजा के द्वारा जुर्माना किए गए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जुर्माना न दे सकें तो राजा काम करवाकर ही जुर्माना वसूल कर ले किंतु ब्राह्मण जुर्माने को धीरे-धीरे चुकाए अर्थात् ब्राह्मण से काम न कराए। (9-248) जानबूझकर ब्राह्मण को पीड़ा पहुंचाने वाले शूद्र को राजा व्याकुलता पैदा करने वाले अनेक प्रकार के वध के उपयों से मार डाले। (10-123) ब्राह्मणों की सेवा करना ही शूद्रों का प्रधान कर्म कहा है। इसके अतिरिक्त वह जो भी काम

करता है उसका वह सब निष्फल हो जाता है। (10-125) शूद्र नौकरों को झूठा अन्न, पुराने कपड़े, धान्यों के पुआल और पुरानी गृहवस्तुएं, ये सब देने चाहिए। (10-129) समर्थ होते हुए भी शूद्र को धन-संग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि शूद्र धन को प्राप्त करके ब्राह्मणों को ही पीड़ित करता है। (11-24) ब्राह्मण यज्ञ के लिए शूद्र से कभी भी भिक्षा न मांगे। शूद्र से भिक्षामांगकर यज्ञ करने वाला ब्राह्मण मरकर चण्डाल बनता है। (11-42) जो ऋत्विक शूद्र से धन लेकर यज्ञ करते-कराते हैं वे शूद्रों के ऋत्विज कहलाते हैं और वेद पाठियों में निन्दित होते हैं। (11-43) शूद्रों से धन लेकर अग्निहोत्र करने-कराने वाले उन महाअज्ञानियों के मस्तष्क पर पैर रखकर दान देने वाला शूद्र दुःखों को पार कर जाता है, अर्थात् उस यज्ञ का पुण्यफल शूद्र को ही मिलता है।

(11-69) निन्दित व्यक्तियों से धन लेना, व्यापार करना, शूद्र की सेवा करना और झूठ बोलना, ये अपात्र वाले कर्म हैं। (11-175) चाण्डाल और नीच वर्णों की स्त्रियों के साथ संभोग करके, साथ खाकर और उनसे दान लेकर अज्ञानपूर्वक इन कार्यों को करने से ब्राह्मण पतित हो जाता है।

यदि हम वर्तमान मनुस्मृति में इन श्लोकों का अध्ययन करेंगे तो स्वाभाविक है कि हमारी मनःस्थिति मनु के विरुद्ध हो जाती है और हम सहज ही में यह स्वीकार कर लेते हैं कि मनु ने ब्राह्मणों को महिमा मंडित किया है, लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। वास्तविकता जानने के लिए हमें मनु की चिंतन-भूमि की ओर लौटना पड़ेगा। मनु एक वैदिक ऋषि थे, अतः उनके द्वारा संस्तुत वर्ण-विभाजन केवल कार्य के विभाजन तक सीमित था, किसी विशेष वर्ण के प्रति सम्मान या घृणा का द्योतक नहीं था। स्वामी दयानंद ने इसी मान्यता पर बल दिया है और इन उपर्युक्त श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है। मनुस्मृति के समकालीन भाष्यकार डॉ. सुरेंद्र कुमार ने इन श्लोकों को कुछ निर्धारित मापदंडों से परखकर इन्हें प्रक्षिप्त घोषित किया है, अतः शूद्रों को इस भ्रम से ऊपर उठ जाना चाहिए कि मनु ब्राह्मण समर्थक और शूद्र विरोधी था।

क्षत्रिय

वेदों के पुरुष-सूक्त में क्षत्रिय की परमात्मा रूपी विराट पुरुष की बाहु से उपमा दी है। यह क्षत्रिय का आलंकारिक वर्णन है। इससे इतर अनेक ग्रंथों में भी क्षत्रिय की परिभाषा मिलती है जो निम्न प्रकार है

1. वेद के अनुसार बलशाली, यज्ञकर्ता, तेजस्वी जैसे दिव्य गुण-युक्त व्यक्ति क्षत्रिय है।

(ऋग 10-66-8)

2. प्रजा का रक्षक, योद्धा, पराक्रमी व दान देने वाला क्षत्रिय है (महाभारत शांति. 189-5)।
3. जिसका मुख्य कर्त्तव्य राज्यव्यवस्था व प्रजा की रक्षा करना है वह क्षत्रिय है।

(गीता 17-43)

4. मनु के अनुसार

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

(मनु. 1-89)

अर्थात्दीर्घ ब्रह्मचर्य से साङ्गोपांग वेदादि शास्त्रों को यथावत पढ़ना, अग्निहोत्र आदि यज्ञों का करना, सुपात्रों को विद्या, सुवर्ण आदि और प्रजा को अभयदान देना, प्रजाओं का सब प्रकार से सर्वदा यथावत पालन करना, विषयों में अनासक्त रहकर सदा जितेन्द्रिय रहना, लोभ व्यभिचार मद्यपानादि, नशा आदि दुर्व्यसनों से पृथक रहकर विनय सुशीलता आदि शुभ कर्मों में सदा प्रवृत्त रहना, क्षत्रियों के गुण-कर्म हैं।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में इस श्लोक का भाष्य इस प्रकार किया हैन्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात रहित होकर श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना, सब प्रकार से सबका पालन, दान, विद्या धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना। अग्निहोत्र यज्ञ करना-कराना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा

पढ़ाना और विषयों में न फंसकर जितेन्द्रिय रहकर सदा शरीर आदि से बलवान रहना, क्षत्रियों के गुण धर्म है।

वैश्य

वेदों के पुरुष सूक्त में वैश्य की विराट पुरुष की जंघाओं से उपमा दी है। पुरुष सूक्त में यह वैश्य का आलंकारिक वर्णन है। मनुस्मृति के अलावा भी कुछ अन्य ग्रंथों में वैश्य को परिभाषित किया गया है। जो निम्न प्रकार है

1. यजुर्वेद (9-40) के अनुसारजो वेदाध्ययन से युक्त कृषि, पशुपालन तथा अन्य व्यापार करते हैं, वैश्य कहलाते हैं।

2. स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार (स.वि. 176) वेदादि शास्त्रों को पढ़ना, अग्निहोत्र आदि यज्ञों का करना, अन्नादि का दान देना, ये तीन धर्म के लक्षण हैं और गाय आदि पशुओं का पालन करना, उनसे दुग्धादि का बेचना। नाना देशों की भाषा, हिसाब, भूगर्भ विद्या, भूमि, बीज आदि के गुण जानना और सब पदार्थों के भावाभाव समझना, ब्याज का लेना, खेती की विद्या का जानना, अन्न आदि की रक्षा, खाद और भूमि की परीक्षा, जोतना, बोना आदि व्यवहार का जानना, इन कर्मों को करने वाला वैश्य कहलाता है।

3. मनु के अनुसार (मनु. 1-90) गाय आदि पशुओं का पालन-वर्धन करना, विद्या-धर्म की वृद्धि के लिए धनादि का व्यय करना। अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, सब प्रकार के व्यापार करना, एक सैकड़े में चार, छः, आठ, बारह, सौलह व बीस आने से अधिक ब्याज और मूल से दुगना, अर्थात् यदि एक रुपया ऋण दिया हो तो सौ वर्ष में भी 2 रुपयों से अधिक न लेना और न देना, खेती करना, ये वैश्य के कर्म हैं

पशुनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदम् च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

(मनु. 1-90)

मनुस्मृति (9-326) के अनुसारयज्ञोपवीत संस्कार पूर्वक शिक्षा समाप्ति के पश्चात, समावर्तन के अनन्तर वैश्य विवाह करके व्यापार में और पशुपालन में सदा लगा रहे। (9-327) प्रजापति ने पशुओं को रचकर वैश्यों को सौंपा है और सब प्रजाओं को उत्पन्न करके ब्राह्मण और क्षत्रियों को सौंपी हैं। (9-328) 'मैं पशुओं की रक्षा नहीं करूंगा ऐसी वैश्य को इच्छा नहीं करनी चाहिए और वैश्य के द्वारा पशुपालन की इच्छा करते रहने पर अन्य वर्ण वालों को पशुपालन का कार्य नहीं करना चाहिए। (9-329) वैश्य मणि, मोती, प्रवाल आदि के, लोहे आदि धातुओं के और कपड़ों के, सुगन्धित कपूर कस्तूरी आदि के और रसायनों के मूल्यों के कम अधिक भावों को जानें। (9-330) वैश्य सब प्रकार के बीजों को बोने की विधि को जानें और खेतों के दोष-गुणों को जाने तथा तोलने के बाटों और तराजुओं से संबद्ध सभी बातों की जानकारी रखें। (9-331) वस्तुओं के अच्छे-बुरेपन को देशों के गुणों और दोषों को तथा बेची जाने वाली वस्तुओं के लाभ-हानि को और पशुओं के संवर्धन के उपायों को वैश्य लोग जानें। (9-332) नौकरों के वेतन, विविध देशों में रहने वाले लोगों की विभिन्न भाषाएं, वस्तुओं के प्राप्ति स्थान तथा मिश्रण आदि की विधियां और खरीद-बिक्री की विधि, वैश्य इनको जानें। (9-333) वैश्य इस प्रकार धर्मपूर्वक पदार्थों की वृद्धि के लिए अधिक से अधिक यत्न करें और सब प्राणियों को प्रयत्नपूर्वक अन्न उपजाकर देता रहे।

शूद्र

यह मनु द्वारा अनुशंसित चतुर्थ और अंतिम वर्ण है और इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भी कि जितना विवादग्रस्त यह वर्ण रहा है ऐसा कोई अन्य वर्ण नहीं रहा है। विभिन्न ग्रंथों अथवा विद्वानों ने इसे किन प्रत्ययों से परिभाषित किया है। इससे पहले यह जानना समीचीन होगा, कि शूद्र का शाब्दिक अर्थ क्या हैं? मोनियर विलियम्स के संस्कृत इंग्लिश कोष के अनुसार 'शू' का अर्थ 'अहम्-भाव' है अर्थात् वह व्यक्ति शूद्र है जिसने अपने अहंभाव को नष्ट कर दिया है या फिर जिस व्यक्ति का अहंभाव नष्ट हो जाता हैशूं द्रवतीति शूद्रः। सच तो यह है कि बौद्धिक कार्यों

के अभाव में उसके पास अहं के लिए कुछ होता ही नहीं है, अतः यह वर्ण अहंभाव को त्यागकर द्विज वर्ग की सेवा में लगा रहता है।

1. वेदान्त (1-3-14) के अनुसारजो शोक के पीछे दौड़ता है वह शूद्र है।
2. डॉ. सूर्यकांत के अनुसारजो मंदबुद्धि शारीरिक परिश्रम से आजीविका-भोगी है, शूद्र है।
3. शतपथ ब्राह्मण (3-6-2-10) के अनुसारअज्ञान और अविद्या से जिसकी निम्न स्थिति रह जाती है, जो केवल शारीरिक परिश्रम से जीविका कमाते हैं, शूद्र हैं।
4. महाभारत (शांति. 189-8) के अनुसारजो सर्वभक्षी, सर्वकर्म परायण वेद ज्ञान-रहित, अनाचारी और अपवित्र है वही शूद्र है।
5. केवल मोटवानी के अनुसारमनोवैज्ञानिक रूप में शूद्रों के लक्षणों को परिभाषित नहीं किया गया है, क्योंकि वह अपनी मानसिकता को स्थिर कर अपने जीवन के लक्ष्य एवं आकांक्षाओं को समग्र रूप में निश्चित नहीं कर पाता है। वह अपनी मानसिक अस्थिरता के कारण परिस्थितियों के दबाव में बहक जाता है।
6. गीता (18-44) के अनुसारपरिश्रम द्वारा समाज की सेवा करना जिसका स्वाभाविक कर्म है, वह शूद्र है।
7. महाभारत (181-13) के अनुसारब्राह्मण होते हुए भी यदि हिंसक, मिथ्यावादी, लोभी, सर्वकर्मोपजीवी और अशुद्ध रहे, तो वह शूद्र है।
8. मनु के अनुसार

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥ *(मनु.1-91)*

अर्थात्परमेश्वर ने जो विद्याहीन-जिसको पढ़ने से विद्या न आ सके, शरीर से पुष्ट, सेवा में कुशल हो, उस शूद्र के लिए इन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों की निंदा से रहित प्रीति से सेवा करना, यही एक कर्म

करने की आज्ञा दी है।

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्श्रेयसः॥ *(9-334)*

अर्थात्वेद के ज्ञाता ब्राह्मणों, यशस्वी गृहस्थियों की सेवा करना ही शूद्र का कल्याण कारक उत्तम धर्म है।

शूद्र और आधुनिक युग का भ्रम

आधुनिक युग में मनु द्वारा अनुशंस्ति शूद्र वर्ण भ्रम के कोहरे से घिरा हुआ है। उस विराट पुरुष के पैरों से शूद्र की उत्पत्ति ही उसकी स्थिति पर संदेह उत्पन्न कर देती है, क्योंकि शरीर के अन्य अंगों की तुलना में पैर हेय दृष्टि से देखे गए हैं, लेकिन महत्त्व की दृष्टि से पैरों का महत्त्व अन्य अंगों से कम नहीं है।

इसी प्रकार शूद्र का महत्त्व समाज के लिए अन्य वर्णों से कम नहीं है। शास्त्र इस बात को प्रमाणित करते हैं

न विशेषोऽस्ति वर्णानाम्(महाभारत, शांतिपर्व 188-10)

अर्थात्वर्णों में पारस्परिक कोई भेद नहीं है, अर्थात् सब वर्ण समान हैं, अतः शूद्र वर्ण हेय नहीं है, बल्कि वह तो अपने परिश्रम, तपस्या, पौरुष और उद्योग प्रिय होने के कारण समृद्धि का आधार है।

वर्ण स्थायी नहीं, बल्कि परिवर्तनीय हैमनु का वर्ण विभाजन व्यक्ति के गुण-कर्म-स्वभाव एवं वृत्तियों के अनुसार, जो व्यक्तिगत विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने के आधार पर है, जिससे व्यक्ति एवं समाज की आर्थिक समृद्धि तथा दोनों का सर्वांगीण विकास हो सके। यह विभाजन प्रकृति के न्याय के अनुकूल भी है, क्योंकि इस व्यवस्था से योग्यतानुसार सभी को अपना-अपना कार्य मिल जाता है और समाज हिंसक संघर्ष की आपदा से बच जाता है तथा उनके लिए भविष्य में एक आश्वासन भी है कि यदि वे अपनी योग्यता का विकास कर लेते हैं, तो वे ऊपर के क्रमांक पर स्थित वर्णों में प्रविष्ट हो सकते हैं, क्योंकि ये वर्ण जन्मना जाति व्यवस्था के समान स्थायी नहीं हैं। ये व्यक्ति की उन्नति व अवनति के साथ बदलते

रहते हैं।

मनु कहते हैं कि शूद्र मनुष्य शुभ कर्मों द्वारा ब्राह्मण और ब्राह्मण दुष्कर्मों से शूद्र हो जाता है। वैसे ही वैश्य और क्षत्रियों के विषय में जानो

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥

(मनु. 10-65)

मनु श्लोक (2-103) में पुनः कहते हैं कि जो मनुष्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासना, स्वाध्याय एवं ज्ञान चिंतन नहीं करता उसे शूद्र के समान समझकर समस्त द्विज कुल से बहिष्कार कर शूद्र कुल में रख देना चाहिए।

श्लोक (2-103) के अनुसार जो द्विज वेद को न पढ़कर अन्य शास्त्रों में परिश्रम करता है वह जीवित ही अपने वंश सहित शीघ्र ही शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2-5-10-11) के अनुसार धर्म-आचरण से निकृष्ट वर्ण भी उत्तम हो जाता है और धर्म-विरुद्ध आचरण से उत्कृष्ट वर्ण भी शूद्र हो जाता है। वसिष्ठ-धर्मसूत्र (13-31) के अनुसार वेदज्ञान-रहित, उपदेश देने में असमर्थ और यज्ञ न करने वाला ब्राह्मण शूद्र हो जाता है।

महाभारत (अनु. 226-14) के अनुसारहे युद्धिष्ठर! कोई मनुष्य कुल जाति और क्रिया के कारण ब्राह्मण नहीं हो सकता। यदि चाण्डाल भी सदाचारी व संयमी है तो वह भी ब्राह्मण होता है।

(143-5) ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होना, संस्कार, वेदश्रवण एवं ब्राह्मण पिता की संतान होना, में ब्राह्मणत्व के कारण नहीं हैं, बल्कि सदाचारी और संयमी शूद्र व्यक्ति भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता है। महाभारत (वन. 216-14) जो ब्राह्मण दम्भी, पापी व दुष्कर्मी होता है वह शूद्र और जो शूद्र इंद्रीय-संयम, सत्य और धर्म में स्थिर रहता है मैं उसे ब्राह्मण मानता हूं, क्योंकि मनुष्य सद्वृत्तियों से ही ब्राह्मण बनता है।

मनु कहते हैं

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै ः।
महा यज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

(मनु. 2-28)

अर्थात्उपासना, ज्ञान, विद्या के ग्रहण पक्षेष्टि यागादि करने सुसन्तानोत्पत्ति एवं पालन, पंचमहायज्ञ और अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञानादि यज्ञों के सेवन से, इस शरीर को ब्राह्मण का शरीर बनाया जा सकता है। (4/244-245) यदि मनुष्य अपने कुल को उत्तम करना चाहे वह अधम और संकीर्ण स्वभाव के लोगों का साथ छोड़ कर नित्य सदाचारी व श्रेष्ठ पुरुषों से सम्बन्ध बढ़ाता जाए। ब्राह्मण वर्ण की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति श्रेष्ठ-श्रेष्ठ लोगों से संबंध बढ़ाते हुए और अधम व नीच लोगों की संगति छोड़ते हुए और अधिक श्रेष्ठता को पाए। इसके विपरीत व्यवहार करने से ब्राह्मण भी अवनत होकर शूद्रता को पा जाता है।

डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल (मनुस्मृति समीक्षक) ने अपनी पुस्तक 'हिंदू धर्मशास्त्रों में छुआछूत' में लिखा है कि मनु-प्रोक्त वर्ण-परिवर्तन न केवल सैद्धांतिक था, वरन् उसका समाज में व्यवहार भी होता था, क्योंकि तब समाज एवं राज्य-व्यवस्था वेदानुसार थी। वेदों के मन्त्रदृष्टा ऋषि ब्राह्मण ही नहीं थे, बल्कि वे भी थे जो पहले कभी क्षत्रिय वैश्य शूद्र थे अथवा दासी-पुत्र एवं शूद्रा मां की संतान थे। जीविका के कारण क्षत्रिय वैश्य हो गए और ईश्वर साधन के लिए अनेक क्षत्रिय व वैश्य ब्राह्मण बन गए थे।

elibrary.thearyasamaj.org

मनु और भारतीय राजनीति

मनु समाज के सुख के प्रति समर्पित थे अपने निजी सुख के लिए नहीं। वे अपने वैयक्तिक सुख के लिए कहीं एकांत में जाकर योग-साधना द्वारा मोक्ष मार्ग पर चल सकते थे, लेकिन यह मार्ग उन्हें स्वीकार नहीं था। वे व्यष्टि सुख की तुलना में समष्टि सुख को श्रेयस्कर मानते थे। समाज को सुखी-समृद्धशाली बनाने के लिए उन्होंने वेदों का अध्ययन किया और वहीं से उन्होंने मानव जीवन के कल्याण के सूत्र विकसित किए। मानव जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाली धर्मनीति, अर्थनीति, कामनीति, मोक्षनीति, राजनीति, वर्णनीति, आश्रम नीति, विधि-विधान नीति, शिक्षानीति का वेदों से ग्रहण किया और नए संदर्भों में इन्हें अपने ग्रंथ मनुस्मृति का विषय बनाया। इन नीतियों के अंतर्गत मनु ने मानव व्यवहार की मर्यादाओं की स्थापना की तथा कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध कराया।

अब एक विवादस्पद प्रश्न उठता है कि मनुस्मृति में उल्लिखित मनु की ये मर्यादाएं क्या उस युग के लिए थी जिस युग में मनु ने इन्हें मनुस्मृति में संकलित किया था या वे शाश्वत सत्य के रूप में जो आने वाले युग के लिए भी प्रासंगिक बनी रहेंगी? यह सत्य है कि मौर्य काल तक आते-आते मनु की मान्यताएं अपनी प्रासंगिकता खो चुकी थीं, लेकिन यह भी सत्य है कि मनु की मान्यताओं के प्रति जिस समाज ने विद्रोहात्मक स्वर उठाया था उसका हस्र समाज के लिए आघातकारी रहा था। उस विद्रोही स्वर से समाज विकलांग हो चुका था जिसके कारण बहुत बड़े भू-भाग पर विदेशी आधिपत्य हो चुका था।

मौर्य काल में लिखे गए अपने अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने वर्ण व्यवस्था को महत्त्व नहीं दिया। वे ब्राह्मणों के महिमागान और शूद्रों के प्रति अन्य वर्णों की उपेक्षा से आहत दिखाई दिए। उन्होंने मनुस्मृति की वर्ण-व्यवस्था को अर्थशास्त्र से चुनौती दे डाली। मनुस्मृति की वर्ण-व्यवस्था में जहां ब्राह्मण को प्रथम स्थान पर रखा गया था अर्थशास्त्र ने वहां क्षत्रिय को रख दिया। मनुस्मृति में क्षत्रिय को ब्राह्मण के अधीन ही शासन का कार्य संपादित करना था, लेकिन अर्थशास्त्र में क्षत्रियों को अपने विवेक से शासन करने की अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। मनुस्मृति में विधान है कि राजा को श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल से सात या आठ मंत्री चुनने चाहिए जो साहसी और वेद शास्त्रों में निपुण हों

मौलांछास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्षान्कुलोदभ्वान्।
सचिववान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्

(मनु. 7-54)

लेकिन अर्थशास्त्र ने मंत्रियों के चुनाव में ऐसा कोई अनुबंध नहीं दिया कि जिसमें केवल ब्राह्मण ही आ सकें। अर्थशास्त्र के अनुसार वरिष्ठ अमात्य के लिए ये गुण जरूरी हैं कि वह देश का अधिवासी हो ऊंचे खानदान का हो और कलाओं में निपुण हो।

मनुस्मृति कहती है कि प्रधान सेनापति का पद, प्रधान न्यायधीश का पद, राज प्रबंध करने वाले राजा का पदये सब पद स्वीकार करने योग्य वही है जो वेदों का पूर्ण ज्ञाता हो, लेकिन अर्थशास्त्र में ऐसा कोई विधान नहीं है।

इस उपर्युक्त विवेचना से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि मौर्य शासन अर्थशास्त्र के विधानों के अनुसार चल रहा था। वर्ण-व्यवस्था शिथिल हो चुकी थी और राजा भी मनुस्मृति में उल्लिखति गुण-कर्तव्यों से स्वयं को धीरे-धीरे मुक्त करने लगे थे। मनुस्मृति की राज्य-व्यवस्था में राजा विद्वान मंत्रियों की मंत्रणा से ही राज-काज संपन्न करना था। मंत्रियों की असहमति राजा के हाथ बांध देती थी, लेकिन अयोग्य मंत्रियों की मंत्रणा

राजा की इच्छा का केवल समर्थन मात्र होती है। वही स्थिति मौर्य वंशीय सम्राट अशोक के लिए सबसे बड़ी त्रासदी बनी।

यदि मनुस्मृति की व्यवस्थाओं के अनुसार अशोक के मंत्रिमंडल में सात या आठ वेदों के पूर्णज्ञाता (ब्राह्मण) मंत्री होते तो वे कलिंग युद्ध के लिए कभी भी अशोक को स्वीकृति प्रदान नहीं कर सकते थे, लेकिन वेद ज्ञान रहित (शूद्र) मंत्रियों ने अशोक की इच्छा को ही अपनी इच्छा से ही तादात्म्य कर दिया जिसके फलस्वरूप भयंकर नरसंहार हुआ और सम्राट अशोक को युद्ध से घृणा हो गई, लेकिन इस घृणा से आगामी भारतीय राजनीति पर दूरगामी प्रभाव पड़ा और भारत विदेशी आक्रांताओं के अधिकार में आ गया।

कलिंग युद्ध की वीभत्सता अशोक के मन में अहिंसा के अंकुर उत्पन्न कर गई। ये अंकुर एक व्यक्ति के लिए तो मानवीय मूल्य थे, लेकिन एक शासक के लिए ये उस स्थिति में अवगुण थे यदि वह इस अहिंसा को राज धर्म के रूप में स्वीकार कर ले, लेकिन सम्राट अशोक ने ऐसा ही किया। उसने अहिंसा को राज धर्म घोषित कर दिया, जो निश्चय ही वेद विरुद्ध स्थापना थी।

अंत वेद ज्ञाताओं (ब्राह्मणों) ने सम्राट अशोक की इस नीति का विरोध किया था, परंतु अशोक अपनी स्थापना से नहीं डिगे थे, मनुस्मृति के उन श्लोकों को सम्राट अशोक ने कोई मान्यता नहीं दी थी जिनमें राजा के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेंद्रः प्रभावतः॥

(मनु. 7-7)

अर्थातवह राजा अपनी सामर्थ्य के कारण अग्नि के समान दुष्टों, अपराधियों का विनाश करने वाला, वायु के समान गुप्तचरों द्वारा सर्वत्र गतिशील होकर प्रत्येक स्थिति की जानकारी रखनेवाला, सूर्य द्वारा किरणों से जलग्रहण करने के समान कष्टरहित कर ग्रहण करनेवाला, चंद्रमा के समान प्रसन्नता देने वाला, न्यायानुसार दंड देने वाला, ऐश्वर्यप्रद परमेश्वर के समान समभाव से प्रजा का पालन करने वाला, जलीय तरंगों या भंवरों के समान

अपराधियों और शत्रुओं को कारागार में डालने और वही वर्षाकारक शक्ति इन्द्र के समान सुख-सुविधा का वर्षक है।

मनु ने अपनी व्यवस्था में मंत्रिमंडल में सात या आठ वेदवेत्ता मंत्रियों को स्थान देने की इसलिए अनुशंसा की है कि वेदवेत्ता (ब्राह्मण वर्ण) राजा को वेदों में उल्लिखित राजा के कर्तव्यों के प्रति उसे सचेत करते रहें। मनु वेदवेत्ता थे और वेदों में राजा के लिए किन कर्तव्यों का विधान है, यह अच्छी प्रकार जानते थे

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः।
वाहुभ्यामुत ते नमः॥

(यजु. 16-1)

अर्थात्हे दुष्ट शत्रुओं को रुलाने वाले राजन! तेरे क्रोधयुक्त वीर पुरुष के लिए बज्र प्राप्त हो और शत्रुओं को मारने वाले राजन! तेरे लिए अन्न प्राप्त हो तथा तेरी भुजाओं से वज्र शत्रुओं को प्राप्त हो।

विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम्॥

(ऋग् 7-1-7)

अर्थात्हे अग्नि के तुल्य तेजस्वी राजन! जिन हाथों को तपाने वाले अग्नि के गुणों से अग्नि जीर्ण अवस्था को प्राप्त हुए पुराने काष्ठ को जलाता हैं उन गुणों से सब शत्रुओं की सेनाओं को जलाइए तथा रोक रूपी शत्रुओं का निवारण कीजिए

प्र भूर्जयन्तमहां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम्।
जयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनिर्चम्॥

(साम. 74)

अर्थात्इस मंत्र का भावार्थ इस प्रकार हैराजा और योद्धाओं का कर्तव्य है कि वे युद्ध में कवच पहनकर आग्नेय अस्त्र का प्रयोग करें, जिससे अपनी विजय, बुद्धिमान पुरुषों की रक्षा और शत्रु-दुर्गों का दमन हो। राजा

आयुद्धों द्वारा अपनी क्षमता बढ़ाकर सूर्य-किरण के समान सीधी रेखा में अग्नि के गोले दाग कर शत्रु का विनाश करे।

उतिष्ठत संनह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत॥

(अथर्व. 11-10-1)

अर्थात्हे उदार पुरुषों! बड़े अनुभवी लोगों! उठो और झुण्डों के साथ कवचों को पहनों, जो सर्पों के समान हिंसक पामर जन राक्षस हैं उन शत्रुओं पर धावा करो।

संभवतः मनु ने ऐसे ही सैकड़ों मंत्रों के आधार पर मनुस्मृति में राजा के कर्तव्यों में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का प्रमुख कर्तव्य माना है, लेकिन सम्राट अशोक के मंत्रिमंडल के सदस्य उसकी नीति के कारण न मनुस्मृति में आस्था रखते थे और न वेदों में, अतः सम्राट अशोक का अहिंसा को राजधर्म के रूप में स्वीकार करना निर्विवाद रूप से मान्य हो गया। इसके मान्य होते ही ब्राह्मण वर्ण पृष्ठभूमि में चला गया और शूद्रों का प्रभाव बढ़ने लगा। समस्त राज्य में महात्मा बुद्ध के धर्म-संघों और भिक्षुओं का महिमा गान होने लगा। जहां रणभेरियों की भुजाओं को फड़फड़ाने वाली ध्वनि गूंजती थी वहां बुद्धम शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम गच्छामि की स्वरलहरियां वातावरण में गूंजने लगीं। जहां आयुद्धों से सजी सेनाओं की गतिविधियां होती थीं वहां भगवावेशधारी भिक्षुओं के झुंड मंडराते घूमते दिखाई देने लगे। ब्राह्मणों ने सम्राट अशोक के राज्य को वेदविहीन राज्य घोषित कर दिया और किसी आने वाली आपदा की संभावना से भयाकुल हो उठे।

सम्राट अशोक की वेद विरुद्ध शासनव्यवस्था की यह नीति उसके वंशजों से होती हुई उसके अंतिम वंशज वृहद्रथ तक जा पहुंची। अहिंसा की नीति के कारण वृहद्रथ अपने क्षत्रियत्व को खो चुका था और मनु की वर्ण-व्यवस्था के आधार पर वह शूद्रत्व को प्राप्त हो चुका था, क्योंकि न उसकी रुचि शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध करने में थी और न शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ करने में। उसके मंत्रीमंडल में कोई वेदवेत्ता मंत्री भी नहीं था,

जो उसे उसके कर्तव्यों के प्रति सचेत करता अतः वृहद्रथ का राज्य राजा विहीन राज्य बन चुका था। इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए भारत के शत्रु ताक लगाए बैठे थे। तभी बलख के यूनानी राजा मेनांदर ने भारत पर चढ़ाई कर दी। उसके आक्रमण को रोकने के लिए शूद्रराजा वृहद्रथ में सामर्थ्य थी ही नहीं, अतः भारत के बहुत बड़े भाग साकेत (अवध) तक के प्रदेशों पर वह अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हो गया।

इस घटना के विश्लेषण में ब्राह्मण वर्ण ने निष्कर्ष निकाला कि वेद विरुद्ध नीति को मान्य करके ही मौर्य वंश ने भारत के बहुत बड़े भाग पर शत्रुओं का अधिकार स्थापित कराने में उन्हें सुविधा प्रदान की है। उन्होंने इसका समाधान वेदों में खोजा। वेद सब सत्य विद्याओं का ग्रंथ है ही अतः इस पराजय का सत्य मिल गया

ब्रह्मगवी पच्चमाना यावत् साभि विजङ्गहे।
तेजो राष्ट्रस्थ निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा।

(अर्थव. 5-19-4)

इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार हैजहां वेद विद्या का निरादार होता है वह राज्य नष्ट हो जाता है और सब लोग निर्बल हो जाते हैं।

ब्राह्मण वर्ण इस वेद के सत्य से भयभीत हो चले थे। अब उन्हें स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि जिस शेष भाग पर अभी भी वृहद्रथ का अधिकार है वह भी नष्ट होने वाला है। कोई अन्य आक्रांता या वही यूनानी मेनांदर शेष भाग पर अधिकार के लिए कभी भी आक्रमण कर सकता है। ब्राह्मण इस आक्रमण को रोकने की योजना में लग गए, इसके लिए उन्होंने संभवतः किसी ऐसे क्षत्रिय की खोज की जो वृहद्रथ से सत्ता छीन कर स्वयं सत्तासीन हो जाए, लेकिन वेद के सत्य के अनुसार वहां सब निर्बलता को प्राप्त हो चुके थे। वर्ण-व्यवस्था के आधार पर अब वहां शूद्र और वैश्यों का ही वर्चस्व रह गया था, अतः ब्राह्मण निराश हो गए, लेकिन उन्हें वृहद्रथ के ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग में आशा की किरण दिखाई दी। उन्होंने पुष्यमित्र शुंग को उत्साहित किया कि वह वृहद्रथ की हत्या करके वेद का निरादर करने वाले इस मौर्य वंश का अंत कर दे और अपने पराक्रम से पुनः वेदानुकूल

शासन-व्यवस्था स्थापित कर दे। संभवतः शुंग के समकालीन वैदिक ऋषि पतंजलि ने वेदानुकूल शासन-व्यवस्था स्थापित करने में ब्राह्मण वर्ण की सहायता की हो। कैसी भी स्थिति रही हो, आखिर शुंग के हाथों वृहद्रथ मारा गया और उसके मरते ही वेदों का निरादर करने वाले मौर्य वंश का अंत हो गया।

पुष्यमित्र के सिंहासन पर बैठते ही पुनः मनुस्मृति द्वारा अनुशंस्ति वर्ण-व्यवस्था प्रभावी हो गई और ब्राह्मण वर्ण पुनः शीर्ष पर प्रतिष्ठापित हो गया। पुष्यमित्र प्रथम ब्राह्मण था जो कभी किसी राजसिंहासन पर आरूठ हुआ। ऐतिहासिक उल्लेख मिलता है कि इस घटना की स्मृति में पुष्यमित्र ने अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन किया था। इस अश्वमेघ यज्ञ के साथ ही वैदिक-व्यवस्था पुनः स्थापित हो गई थी। 'मंजू श्री मूलकल्प' का बौद्ध लेखक लिखता है कि सिंहासन पर बैठने के बाद पुष्यमित्र ने बौद्ध मठों को गिरवा दिया और बड़े-बड़े बौद्ध भिक्षुओं को कत्ल करवा दिया।

ब्राह्मणों द्वारा नियोजित यह सशस्त्र क्रांति निश्चय ही भारत को बाह्य आक्रमणों से बचाने के लिए की गई थी, क्योंकि वृहद्रथ एक निर्बल शासक था और अपने पूर्वज के आदेशानुसार शत्रुओं को शक्ति से जीतने की अपेक्षा प्रेम से जीतन में विश्वास करता था, जो निश्चय ही असंभव तो था ही, लेकिन वैदिक नीति के विरुद्ध भी था। ब्राह्मणों की यह मान्यता बन चुकी थी कि मौर्यवंश मनुस्मृति को शासन-व्यवस्था का आधार न बनाकर बहुत बड़ी भूल कर रहा है और यह भूल ही एक दिन भारत पर विदेशी शासन को आमंत्रित कर डालेगी।

मनु के सात-आठ ब्राह्मण मंत्रियों को मंत्रिमंडल में स्थान देने का यथार्थ इस घटना से सही प्रमाणित हो रहा है। यदि मौर्य शासन कौटिल्य अर्थशास्त्र को महत्त्व न देकर मनुस्मृति को अपनी शासन-व्यवस्था का आधार बना लेता तो उसका दुखद अंत न होता और न ही भारतीय भू-भाग पर विदेशी आक्रांताओं का शासन स्थापित होता।

इस घटना के मूल में क्या सत्य था स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता। क्या इसके मूल में ब्राह्मण वर्ण का भारत को विदेशी आक्रांताओं से बचाने का प्रयास था या फिर यह शुंग का स्वतः स्फूर्त निर्णय था इसमें भी विद्वानों

की भिन्न टिप्पणियां हैं। शुंग सेनापति के नेतृत्व में ब्राह्मणों की इस प्रक्रिया को स्व. काशी प्रसाद जायसवाल ने रूढ़ीवादी प्रतिक्रांति के नाम से पुकारा है (भारत और मानव संस्कृति खंड-1, सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित), जायसवाल ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र को प्रगतिशीलशास्त्र माना है और मनुस्मृति को रूढीवादी। जायसवाल के अनुसार यह क्रांति मूलतः अर्थशास्त्र के विरुद्ध ही थी, क्योंकि अर्थशास्त्र में मनुस्मृति की वर्ण व्यवस्था को महत्त्व नहीं दिया गया है और ब्राह्मणों को भी महिमा मंडित नहीं किया गया है, लेकिन वैदिक विचारधारा के विद्वानों का मत है कि यह क्रांति भारत को विदेशी आक्रांताओं से बचाने के लिए ब्राह्मण वर्ण का प्रयास था और इसके मूल में मनु की मान्यताएं ही थीं।

कुछ विद्वानों का मत है कि मौर्यवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त का जन्म एक शूद्र घराने में हुआ था। इसकी माता मोर पालने वाले एक कबीले के मुखिया की कन्या थी। यह मत जैन साहित्य में उल्लिखित किसी घटना पर आधारित हैं, लेकिन वहां चंद्रगुप्त के पिता का कोई उल्लेख नहीं है। विद्वानों को मत है कि 'मोर' शब्द से मौर्य की उत्पत्ति हुई है।

चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म 345 ईसा पूर्व में स्वीकार किया जाता है। संभवतः उस काल में मनु की वर्ण-व्यवस्था जाति-व्यवस्था में परिवर्तित हो गई थी। ब्राह्मण वर्ण जाति में परिवर्तित होकर स्थायीरूप से समाज में अपना वर्चस्व ब्राह्मण वर्ण की भांति बनाए रखने में सफल हो चुका था, अतः वह चंद्रगुप्त मौर्य को शूद्र घराने में जन्म के कारण शूद्र ही समझता था और अब नई परिस्थितियों में शूद्र जाति ब्राह्मण जाति के लिए घृणित हो चली थी, इसलिए चंद्रगुप्त मौर्य ब्राह्मणों के लिए घृणित शासक बन चुका था।

एक शूद्र शासक के अधीन रहना उन्हें स्वीकार नहीं था, अतः उन्होंने चंद्रगुप्त मौर्य को शासक का सम्मान नहीं दिया और न ही चंद्रगुप्त मौर्य ने उन्हें ब्राह्मण होने के नाते महिमा-मंडित किया। अंतिम मौर्य शासक वृहद्रथ के शासन काल में बौद्ध मत का भारतीय समाज पर पूर्ण वर्चस्व स्थापित हो चुका था। ब्राह्मणों को यह स्थिति सहन नहीं थी। वे बौद्ध मत को ब्राह्मण-विरोधी मत मानते थे, अतः वे बौद्ध सत्ता को किसी भी स्थिति में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि बौद्ध सत्ता

के विरुद्ध ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुंची जब यूनानी राजा मेनांदर ने भारत पर चढ़ाई करके अवध तक के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। ब्राह्मणों ने इस घटना को अपने पक्ष में स्वीकार किया और इसका लाभ उठाते हुए इस पराजय का संपूर्ण उत्तरदायित्व बौद्ध मत पर डाल दिया। भारतीय समाज जो इस पराजय से आहत था उसे ब्राह्मणों का तर्क सशक्त दिखाई दिया और ब्राह्मणों को समाज की ओर से वृहद्रथ को अपदस्त करने का अवसर मिल गया, जिन्होंने इसका लाभ उठाया और वृहद्रथ की हत्या करके स्वयं सत्ता पर आसीन हो गए।

पुष्यमित्र शुंग वैष्णव-धर्म का अनुयायी था। इस नाते वह बौद्ध धर्म के प्रति असहिष्णु था। उसके शासन संभालते ही जहां बौद्धों का दमन शुरू हुआ वहां ब्राह्मणवाद की पुनर्स्थापना हो गई। उन्होंने शूद्रों से मौर्य काल का प्रतिशोध लेने के लिए मनु द्वारा रचित मनुस्मृति में ऐसे श्लोकों को प्रविष्ट कर डाला जिनमें शूद्रों के प्रति घृणा को शास्त्रीय रूप से सही ठहराया गया था। यह कार्य संभवतः सुमति भार्गव ने किया था। इन्हीं श्लोकों के कारण कुछ विद्वान मनुस्मृति का रचनाकाल शुंग के शासन काल को ही मानते हैं।

इन घटनाओं का स्वरूप चाहे कैसा भी रहा है, लेकिन मनु की इस देन से इंकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने शक्ति के ऊपर बुद्धि के वर्चस्व की आवश्यकता पर बल दिया है। मनु की वर्ण-व्यवस्था में क्षत्रिय शक्ति का प्रतीक है और ब्राह्मण बुद्धि का। आज के युग में मनु की यही मान्यता विश्व के सभी सभ्य देशों में मान्य है। राजा और सेना को मंत्रिमंडल के अधीन किया गया है। यह मंत्रिमंडल ब्राह्मणों का ही प्रतीक है। जितना योग्य मंत्रिमंडल होगा वह अपने प्रभाव से उतना ही अधिक राजा को सही दिशा दे सकेगा।

मनु मनुस्मृति में लिखते हैं कि राजा को वेदों का ज्ञाता होना चाहिए। इस तर्क के मूल में मनु की यह मान्यता है कि वेदों में और मनुस्मृति में राजा के कर्तव्यों का विशद् विवरण है और जब तक राजा को अपने कर्तव्यों का ज्ञान नहीं होगा वह सफल राजा सिद्ध हो ही नहीं सकता। मनुस्मृति में लिखा है

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितन्।
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः॥

(9-255)

अर्थात्जिस राजा के बाहुबल के सहारे राष्ट्र अर्थात् प्रजाएं निर्भय रहती हैं उसका वह राज्य सींचे गए वृक्ष की भांति सदा बढ़ता रहता है।

मनुस्मृति के इस श्लोक में राजा का बाहुबल सेनाएं और आयुद्ध होते हैं। यदि किसी देश के पास न सेनाएं हैं और न आयुद्ध तो मनु की मान्यता है कि वह बिना बाहु का राजा है, फिर ऐसा राजा प्रजा की रक्षा कैसे कर सकेगा?

मनु की दृष्टि में वेदवेत्ता के रूप में लाल बहादुर शास्त्री राजा के पद के योग्य थे और मनुस्मृति की मान्यताओं के अनुसार चलकर जहां उन्होंने अपनी योग्यता प्रमाणित की वहां मनु को भी प्रासंगिक सिद्ध कर दिया।

राजस्थान उच्च न्यायालय जयपुर के परिसर में स्थापित आदि विधिदाता मनु की प्रतिमा देखकर सहज ही विश्वास हो जाता है कि समकालीन भारतीय विधि-विभाग आज भी मनु को आदर की दृष्टि से देखते हैं और अनेक विवादों का निदान मनुस्मृति में खोजते हैं। पारिवारिक संपत्तियों के बंटवारे संबंधी अनेकों विवाद मनुस्मृति की सहायता से सुलझाए गए हैं। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भी आदि विधिदाता मनु द्वारा रचित मनुस्मृति से ही दिशा-निर्देश लिए हैं।

भारत में ही नहीं विदेशों में भी मनुस्मृति को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। वैदिक काल में जिन देशों के साथ भारत के निकटतम संबंध रहे हैं यथा जावा, सुमाया आदि द्वीपों पर भारतीयों का अधिपत्य रहा है वहां के संविधान निर्माताओं ने भी मनुस्मृति से दिशा निर्देश लिए हैं। केवल मोटवानी की पुस्तक 'मनुधर्मशास्त्र ए सोशियोलॉजिकल एंड हिस्टोरिकल स्टडी' में एक ऐसा विवरण मिलता है, जो यह सिद्ध कर देता है कि चीन में भी मनुस्मृति का महत्त्व था, क्योंकि चीन में मनुस्मृति पर की गई किसी विद्वान की ऐसी टिप्पणी मिली है जो सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अंतर्गत

कहीं गुप्त जगह में छिपाई गई थी। यह एक ऐतिहासिक घटना है जो सन् 1932 में घटी है। जब जापान ने बम विस्फोट द्वारा चीन की ऐतिहासिक दीवार को तोड़ा तो उसमें एक लोहे का ट्रंक मिला, जिनमें चीनी पुस्तकों की प्राचीन पाण्डुलिपियां भरी हुई थीं। वे हस्तलेख सर ऑगुत्स फ्रित्ज जॉर्ज को मिल गए। वह उन्हें लंदन ले आया और उनको ब्रिटिश म्यूजियम में रख दिया।

उन हस्तलेखों को चीनी भाषा के विद्वानों से पढ़वाया गया। उनसे यह जानकारी मिली कि चीन के राजा चिन-इज-वांग ने अपने शासन काल में यह आज्ञा दे दी थी कि सभी प्राचीन पुस्तकों को नष्ट कर दिया जाए, तब किसी विद्या प्रेमी ने उन्हें ट्रंक में छिपा लिया और दीवार बनाते समय उन्हें दीवार में चिनवा दिया। चीनी भाषा में लिखे गए हस्तलेखों में एक में यह लिखा थामनु का धर्मशास्त्र भारत में सर्वाधिक मान्य है जो वैदिक संस्कृत में लिखा है और दस हजार वर्ष से अधिक पुराना है।

elibrary.thearyasamaj.org

मनु का अध्यात्म-चिंतन

मनुस्मृति के बारहवें अध्याय में मनु ने ईश्वर और मोक्ष प्राप्ति के साधनों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। यह अध्याय मनुस्मृति का अंतिम अध्याय है और मोक्ष भी चारों पुरुषार्थों में अंतिम पुरुषार्थ है तथा साथ ही साथ यह मानव का अंतिम लक्ष्य भी है। भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि मानव का जगत में जन्म लेने का उद्देश्य ही मोक्ष प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मनु हमारा पथ-प्रदर्शन करते हैं

वेदाभ्यासस्तयोज्ञानमिन्द्रियाणाम् च संयमः।
धर्मक्रियऽत्मचिन्ता च निःश्रेयसकरं परम्॥

(मनु. 12-86)

अर्थात्वेदों का अभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रिसंयम, धर्मक्रिया, आत्मचिंता ये छः मोक्ष प्रदान करने वाले सर्वोत्तम कर्म हैं। इन सब कर्मों में आत्मचिंता (परमात्मज्ञान) सर्वश्रेष्ठ कर्म माना है। यह सब विद्याओं में सर्वप्रमुख कर्म है, इससे मुक्ति प्राप्त होती है (12-85)।

मनु निःस्पृहता से भी सुख और मोक्ष की प्राप्ति की ओर संकेत करते हैं

यदाभावेन भवति सर्वभावेष निःस्पृह।
तदा सुखमवाटनोति प्रेत्य चेह च शश्वतम्॥

(6-80)

अर्थात्जब संन्यासी सब पदार्थों में अपने भाव से निस्पृह होता है तभी इस लोक में जन्म और मरण पाकर परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त होकर निरन्तर सुख को प्राप्त होता है। *(6-81)*

इस विधि से धीरे-धीरे सब संग से हुए दोषों को छोड़कर सब हर्ष-शोकादि द्वंद्वों से निर्मुक्त होकर विद्वान संन्यासी ब्रह्म ही में स्थिर होता है। (6-75) सब भूतों से निर्वैर, इन्द्रियों के विषयों का त्याग, वेदोक्त कर्म और अत्युग तपश्चरण से इस संसार में, मोक्ष पद को पूर्वोक्त संन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं, अन्य नहीं। (6-74) जो संन्यासी यथार्थज्ञान व षड्दर्शनों से युक्त है, वह दुष्टकर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ज्ञान, विद्या, योगाभ्यास, सत्संग, धर्मनुष्ठान व षड्दर्शन से रहित विज्ञानहीन होकर संन्यास लेता है, वह संन्यासी पदवी और मोक्ष को प्राप्त न होकर जन्म-मरण रूप संसार को प्राप्त होता है। (6-78) जैसे वृक्ष नदी के किनारे को अथवा जैसे पक्षी वृक्ष को बिना किसी दुख और मोह के छोड़ देता है वैसे ही इस शरीर को छोड़कर व्यक्ति दुःख रूपी मगरमच्छ से छूट जाता है। (6-82) यह जो कुछ पहले कहा गया है यह सब ही ध्यान योग द्वारा सिद्ध होने वाला है। अध्यात्म ज्ञान से रहित कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त कर्मों के फल को नहीं पा सकता। (6-85) इस क्रमानुसार संन्यास योग से जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य संन्यास ग्रहण करता है वह इस संसार और शरीर में सब पापों को छोड़कर परब्रह्म को प्राप्त होता है।

महर्षि मनु कहते हैं कि वैदिक कर्म दो प्रकार के हैंसुख प्रदान करने वाले प्रवृत्तकर्म और मुक्ति प्रदान करनेवाले निवृत्तकर्म

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च।
प्रवृतं च निवृतं च द्विविधं कर्म वैदिकम्॥

(12-88)

श्लोक (12-89) में मनु कहते हैं कि इस लोक या परलोक में इच्छापूर्वक किया गया काम प्रवृत्तकर्म कहलाता है और ज्ञानपूर्वक निष्काम भावना से युक्त होकर जो कर्म किया जाता है, वह निवृत्तकर्म कहलाता है। (12-90) मनुष्य प्रवृत्तकर्म करके देवों की समानता पाता है और निवृत्त कर्म करके

निश्चित रूप से पंचभूतों का अतिक्रमण कर जाता है, अर्थात् जन्म-मरण के बंधन से छूटकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

महर्षि मनु परमात्मा को सुख का स्थान बताते हुए (6-84) में कहते हैं कि यही अज्ञानियों का, यही गौण संन्यासियों का, यही विद्वान संन्यासियों का, यही सुख की खोज करने वालों का और यही अनंत सुख की (मोक्ष) की इच्छा करने वाले का आश्रय है। (12-91) सब चराचर पदार्थों एवं प्राणियों में परमात्मा की व्यापकता को और परमात्मा में सब पदार्थों एवं प्राणियों के आश्रय को समान भाव से देखता हुआ, अर्थात् यथार्थ ज्ञानपूर्वक सर्वत्र परमात्मा की स्थिति का अनुभव कर सर्वदा उसी का ध्यान करता हुआ परमात्मा का उपासक मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। (12-92) श्रेष्ठ द्विज परमात्मा के लिए विहित यज्ञ आदि कर्मों को छोड़कर भी परमात्मा, इन्द्रिय संयम और वेदाभ्यास में प्रयत्नशील अवश्य रहें, अर्थात् इनको किसी भी अवस्था में न छोड़ें।

महर्षि मनु व्यवस्था देते हैं कि गृहस्थाश्रम का सुख भोगते हुए भी मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः॥

(6-87)

अर्थात्ब्रह्मचार्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास ये चारों अलग-अलग आश्रम गृहस्थाश्रम से ही उत्पन्न हुए हैं।

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम्॥

(6-88)

अर्थात्इन सब (आश्रमों) का क्रमानुसार शास्त्रोक्त विधानों के अनुसार पालन करने पर, कर्तव्यों का यथोक्त विधि से पालन करनेवाला द्विज उत्तम गति को प्राप्त हो जाता है।

मनु समाधि से भी ईश्वर एवं मोक्ष प्राप्ति का विधान रचते हैं। श्लोक

(12-125) में वे व्यवस्था देते हैं कि समाधि योग से जो मनुष्य सब प्राणियों में परमेश्वर को देखता है, वह सबको अपनी आत्मा के समान प्रेम भाव से देखता है। वही परमपद जो ब्रह्म-परमात्मा है उसको यथावत प्राप्त होकर सदा आनंद को प्राप्त होता है।

मनु के अध्यात्म चिंतन से यह सिद्ध हो जाता है कि वे कहीं भी वेद से बाहर नहीं गए हैं। मनुस्मृति के श्लोक (12-125) और यदुर्वेद के श्लोक (40-6) में पूर्ण समानता है

वस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥

(यजु. 40-6)

अर्थात्जो मनुष्य आत्मा अर्थात् परमात्मा में तथा अपनी आत्मा के सदृश समस्त जीव और जगत के जड़ पदार्थों को अनुकूलता से अथवा धर्माचरण और योगाभ्यास आदि से देखता है और समस्त प्राणियों और प्रकृतिस्थ पदार्थों में सर्वत्र व्याप्त परमात्मा को देखता है, ऐसे सम्यक्दर्शन के बाद वह संशय को प्राप्त नहीं होता, अर्थात् संशय रहित होकर निर्भ्रम ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

elibrary.thinkbysocial.org

मनुवाद-समाज के लिए वरदान या अभिशाप

मनुवाद

मनुस्मृति के आधार पर या मनु के किसी व्यवहार के आधार पर अब तक 'मनुवाद' जैसा वाद अस्तित्व में नहीं आया था, परंतु गत कुछ वर्षों से यह 'मनुवाद' शब्द भारत के वायुमंडल में उछलता हुआ परिभ्रमण कर रहा है। यह शब्द भारतीय राजनीति की उच्छृंखलता का एक तरोताजा उदाहरण है। भारतीय राजनीति इस युग में आकर इतनी प्रदूषित हो गई है कि इसके प्रदूषण को मापना ही असंभव हो गया है, इसे प्रदूषण मुक्त करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। मनु की वर्ण-व्यवस्था जातिगत व्यवस्था में रूपांतरित होकर भी इस समाज को इतना विघटित नहीं कर सकी है, जितना इन राजनीतिज्ञों ने वोट बैंक बढ़ाने के लिए कर दिया है। कहीं अगड़े-पिछड़े का पारस्परिक द्वेष, कहीं सवर्ण और दलितों का द्वेष, कहीं हिंदू और मुसलिमों का पारस्परिक द्वेष और कहीं आरक्षण तथा अनारक्षण का पारस्परिक द्वेष आज अपने सर्वोच्च बिंदु पर है। इस विस्फोटक स्थिति के लिए जो घृणित खेल खेला जा रहा है उसे भारतीय राजनीति कहते हैं। 'मनुवाद' इसी घृणित खेल का एक दांव है। इस दांव से समाज में विष घोलकर राजनैतिक दल या व्यक्ति विशेष भी अपनी कुर्सी पक्की करने में व्यस्त हो रहा है। इस विष से समाज के सामंजस्य को हानि उठानी पड़ेगी उससे उस राजनैतिक दल या व्यक्ति विशेष को कोई लेना-देना नहीं है। अर्थात् समाज के सुख और समृद्धि के लिए उस राजनैतिक दल का कोई दायित्व नहीं है।

इससे अधिक राजनीति की और विडंबना क्या होगी कि जब एक विशेष राजनैतिक दल को 'मनुवाद' 'मनुवाद' चिल्लाते-चिल्लाते भी सफलता नहीं मिल पाती और वह अपनी इस मान्यता पर स्थित हो जाता है कि सवर्ण की सहायता के बिना नैया पार नहीं हो सकती तो वह दल 'सर्वजनवाद' 'सर्वजनवाद' चिल्लाने लगता है। कुर्सी के लिए बदलते ये उद्घोष भारतीय राजनीति की करुण कथा है।

मनु विरोध की प्रक्रिया में डॉ. अम्बेडकर सबसे अधिक चर्चित एवं अग्रणी रहे हैं। जन्मना जाति-व्यवस्था व उससे जुड़ी जाति-भेद, छुआ-छूत, जात-पात की खाई से जो आक्रोश उनके मन में उत्पन्न हुआ वह स्वाभाविक और उचित था। वे महान व्यक्ति थे और राष्ट्र भक्त थे, इसलिए उन्होंने इस विघटन का अपने हित के लिए कोई लाभ नहीं उठाना चाहा और 'मनुवाद' जैसे शब्द का उत्पादन भी नहीं किया, बल्कि उनका समग्र प्रयास शूद्रों को आर्य सिद्ध करने में लगा रहा, जिससे अन्य वर्ग के लोग उनसे घृणा करनी बंद कर दें। उन्होंने एक ऋषि की भांति जात-पात के अंतर को कम करने के लिए ग्रंथों का प्रणयन किया, उनके अंतर को बढ़ाकर अपना वोट बैंक बढ़ाने के लिए नहीं किया। उनके अंदर एक मानव का हृदय था एक राजनेता का नहीं। वे समाज के इस बंटवारे से दुखी थे और इसका कोई समाधान खोजना चाहते थे। यदि वे 'मनुवाद' शब्द का प्रयोग भी करते तो भी उनके लिए उचित था, क्योंकि उन्होंने मनुस्मृति का अध्ययन किया हुआ था, लेकिन आज की प्रदूषित राजनीति के युग में यदि कोई मनुस्मृति को स्पर्श किए बिना ही 'मनुवाद' का राग अलापता है तो उसका उद्देश्य न शूद्रों के उत्थान के लिए है और न समाज की समृद्धि के लिए। यदि उनसे मनुवाद का अर्थ पूछा जाए तो उनका उत्तर होगा सवर्णों द्वारा दलितों का शोषण, लेकिन क्या सवर्ण और दलित मनु के उत्पादन थे? जिन संदर्भों में मनुवाद का प्रयोग किया जा रहा है उससे स्पष्ट होता है कि मनु और मनुवाद के विषय में लोग बहुत बड़ी भ्रांति के शिकार हैं।

मनु पर जाति-प्रथा को बढ़ावा देने का आरोप प्रायः लगता आया है, लेकिन मनु ने जिस वर्ण-व्यवस्था को वेदों से ग्रहण किया था वह जाति-प्रथा नहीं थी। ऋग्वैदिक काल में भारतीय आर्य एक संगठित जाति थे। आजकल

की तरह उनका समाज असंख्य जातियों में बंटा हुआ नहीं था। उनमें आपस के खान-पान, शादी-ब्याह में सामाजिक प्रतिबन्ध नहीं था। वैयक्तिक मानसिक भिन्नता के आधार पर धीरे-धीरे भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था का विकास होने लगा था, किंतु यह वर्ण व्यवस्था गुण और धर्म के अधार पर प्रारंभ हुई। कहीं भी इस बात के प्रमाण नहीं मिलते कि जाति-पाति के बंधन वैदिक काल में मौजूद थे। उस समय कोई भी ऐसा प्रतिबन्ध नहीं था जिसके अनुसार एक वर्ण के व्यक्ति दूसरे वर्ण में प्रवेश न कर सकें। मनु की वर्ण-व्यवस्था का प्रारूप यही था और यही प्रारूप उन्होंने मनुस्मृति में स्थापित किया है।

मनु ने कहा है कि मनुस्मृति में ऐसा कुछ नहीं हैं, जो वेदों से बाहर हो, लेकिन वर्तमान मनुस्मृति में ऐसा क्यों है, जो वेदों में नहीं है। शूद्रों के प्रति ब्राह्मणों की उपेक्षा, शोषण व अन्याय मनुस्मृति में अंकित है। इसका सहज-स्वाभाविक उत्तर यह है कि शूद्रों के प्रति घृणा और अत्याचार वाले श्लोक मनु-प्रोक्त नहीं हैं, बल्कि वे प्रक्षिप्त हैं, जिन्हें कुछ स्वार्थी समाजविरोधी तत्वों ने बाद में मनुस्मृति में प्रविष्ट किए हैं। उनमें से अधिकांश संभवतः शुंग काल में सुमति भार्गव नाम के किसी व्यक्ति ने मूल मनुस्मृति में सम्मिलित किए हैं। फिर वह मनुवाद नहीं बल्कि भार्गववाद हुआ।

वैदिक काल में स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के समान थे, बल्कि कुछ विशेष कार्यों में पुरुषों से भी उच्च थे। बाल-विवाह का उस समय नाम-निशान नहीं था, लड़कियां जवान होने तक अपने पिता के घर में ही रहती थी और उसके बाद उसे अपने लिए पति चुनने का पूर्ण अधिकार था। गृहणी के रूप में वह अपने घर की स्वामिनी होती थी। घर के सेवकों पर उसका पूर्ण अधिकर होता था। वे अपने पति के साथ नित्य यज्ञ-हवन करती थी और अन्य अनुष्ठान करती थी। उनके पति तथा अन्य संबंधी स्त्रियों को पूर्ण सम्मान देते थे। यहीं तक ही नहीं अपितु वे शिक्षित होकर ऋषियों का पद प्राप्त कर सकती थी। घोषा, लोपामुद्रा, विश्वरा और कामायनी (श्रद्धा) इसकी उदाहरण हैं।

मनु की मौलिक मनुस्मृति में नारी का यही रूप वर्णित था, लेकिन वर्तमान मनुस्मृति में नारी का रूप इससे भिन्न है। कुछ श्लोक नारी की

गरिमा का ह्रास कर रहे हैं। निश्चय ही ये श्लोक मनुप्रोक्त नहीं हैं, क्योंकि मनु एक वैदिक ऋषि थे अतः वेदों से अलग अपना कोई चिंतन स्थापित करना उन्हें स्वीकार नहीं था। समय-समय पर कुछ असामाजिक तत्वों ने इन आपत्तिजनक श्लोकों को मनुस्मृति में सम्मिलित करके मनुस्मृति को विकृत कर डाला है। फिर इन विकृति के लिए मनु को क्यों दोषी ठहराया जाए? क्यों उसे नारी विरोध सिद्ध किया जाए? उन्होंने जो लिखा है वह पहले से ही वेदों में लिखा हुआ है

यः कश्चित कस्याचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥

(मनु. 2-7)

अर्थातमनुस्मृति में मनु ने जिस किसी के धर्म या कर्तव्य का विधान किया है, यह सब पहले से ही वेद में विहित हैं, क्योंकि वेद तो सब ज्ञान का भंडार है।

अब उपरोक्त विवरण के आधार पर मनुवाद को परिभाषित किया जा सकता है।

मनुवाद

व्यक्ति व समाज के सुख और समृद्धि के लिए कल्याणकारी विधि-विधानों के निर्माण के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुसार कार्य का आवंटन करना मनुवाद कहलाता है।

'मनुवादी' का अर्थ अब एक ऐसे व्यक्ति से है जो समाज के कल्याण के लिए चिंतन करता है और ऐसी व्यवस्था का समर्थक है, जो प्रत्येक व्यक्ति को उसकी सामर्थ्य के अनुसार अपने को प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करती है।

क्या मनु समाज के लिए अभिशाप हैं?

नारी विरोधी और शूद्र विरोधी प्रतीत होने के कारण कुछ विशेष वर्गों ने उन्हें समाज के लिए अभिशाप मान लिया है, लेकिन उनका यह भ्रम निराधार है। मनु को समझने में विफल रहने के कारण उनके मन में यह

भ्रम उत्पन्न हुआ है। मनु के संबंध में उनका अपूर्ण ज्ञान यह सरल स्थापना दे देता है कि मनु की दृष्टि में अनुसूचित व पिछड़ी जातियां शूद्र हैं, लेकिन वास्तविक यह नहीं है। मनु का वर्णों का निर्धारण जन्म से नहीं होता। फिर शूद्र का निर्धारण जन्म से क्यों होगा? मनु स्कंद पुराण की इस बात को मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है। उपन्यन संस्कार व शिक्षा से दीक्षित होकर ही वह द्विज बनता है

शूद्रेण हि समस्तावद् यावद् वेदे न जायते।

(मनु. 2-172)

अर्थात्जब तक व्यक्ति का वेदाध्ययनरूप जन्म नहीं होता तब तक वह शूद्र के समान ही होता है। यदि अनुसूचित व पिछड़ी जाति में जन्में किसी व्यक्ति ने नियमित शिक्षा-दीक्षा से विद्यारूपी दूसरा जन्म पा लिया हो तो वह द्विज हो गया है। इसी प्रकार ब्राह्मण जाति में जनमे किसी व्यक्ति ने शिक्षा-दीक्षा प्राप्त नहीं की हो तो वह शूद्र हो जाता है। जब तक जातियां अस्तित्व में नहीं आई थीं तब तक ये वर्ण स्वतः ही परिवर्तित होते रहते थे, लेकिन अब ये बंद वर्ग की जातियां अस्तित्व मे आई हुई हैं अतः प्रत्येक जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हो रहे हैं, उन्हें अब चार वर्णों में वर्गिकृत नहीं किया जा सकता। इस परिस्थितियों में मनु की कर्मणा वर्ण-व्यवस्था आज के हिंदू समाज की जन्मना जाति-व्यवस्था पर लागू नहीं होती। यह इतना बड़ा परिवर्तन मनु के चिंतन-दर्शन का परिणाम नहीं है। इस परिवर्तन के मूल में मनु कहीं तक भी नहीं है, फिर मनु द्वारा इस व्यवस्था के समर्थन करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, फिर इन जातियों द्वारा मनु का विरोध क्यों?

यद्यपि डॉ. अम्बेडकर ने मनु की आलोचना की, परंतु फिर भी उनके विचार स्वागत-योग्य हैं, जो उन्होंने अपने ग्रंथ जाति-प्रथा उन्मूलन, संपूर्ण वाङ्मय खंड एक में प्रकट किए हैं, जो निम्न प्रकार हैं

1. एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति-विधान का निर्माण नहीं किया है और न वह ऐसा कर सकता था। जाति प्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका

केवल पोषक था।

2. जाति का आधारभूत सिद्धांत वर्ण के आधारभूत सिद्धांत के मूल रूप से भिन्न है, न केवल मूलरूप से भिन्न है, बल्कि मूलरूप से परस्पर विरोधी है। पहला सिद्धांत गुण पर आधरित है.... वर्ण-व्यवस्था की स्थापना के लिए पहले जाति-प्रथा को समाप्त करना होगा।
3. सामाजिक और वैयक्तिक कार्य-कुशलता के लिए आवश्यक है कि किसी व्यक्ति की क्षमता का इस बिन्दु तक विकास किया जाए कि वह अपनी जीविका का चुनाव स्वयं कर सके। जाति-प्रथा में इसका उल्लंघन होता है।
4. वेद में वर्ण की धारणा का सारांश यह है कि व्यक्ति वह पेशा अपनाए जो उसकी स्वाभाविक योग्यता के उपयुक्त हो।
5. मैं मानता हूं कि स्वामी दयानंद व कुछ अन्य लोगों ने वर्ण के वैदिक सिद्धांत की जो व्याख्या की है, वह बुद्धित्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है। मैं यह व्याख्या नहीं मानता कि जन्म किसी व्यक्ति का समाज में स्थान निश्चित करने का निर्धारक तत्व हो। मेरी व्याख्या केवल योग्यता को मान्यता देती है।
6. कदाचित मनु जाति के निर्माण के लिए जिम्मेदार न हो, परंतु मनु ने वर्ण की पवित्रता का उपदेश किया है और वर्ण जाति की जननी है। इस अर्थ में मनु जाति-व्यवस्था के लेखक न भी हो, परंतु उसका पूर्वज होने का उस पर निश्चित ही आरोप लगाया जा सकता है।

क्रमांक 6 पर डॉ. अम्बेडकर ने जिस भांति मनु पर जाति-प्रथा के पूर्वज होने का संकेत किया है। वह निश्चय ही विचारणीय है। अम्बेडकर के इस आरोप से मनु की सुरक्षा करना कठिन प्रतीत हो रहा है। मनु ने जिस भावना से वर्ण-व्यवस्था का विधान किया था। वह मानवीय प्रकृति के प्रतिकूल निकली। उसका केवल सैद्धांतिक पक्ष ही लुभावना प्रतीत होता था, लेकिन जब यह प्रचलन में आई तो इसके समक्ष अनेक कठिनाइयां थीं। यह व्यवस्था तब तक ही चल सकती थी जब तक समाज के अंतर्गत व्यक्तिवाद का

उदय न हुआ हो, लेकिन व्यक्ति का अहम समाजवाद को स्वीकार करने की स्थिति में कभी नहीं रहा है। व्यक्ति का यह अहम समाज के सामंजस्य को रौंदता हुआ व्यक्तिवाद के रूप में समाज को अपनी पहचान दे देता है।

एक ब्राह्मण वर्ण में जनमा बच्चा भले ही वेदों का अध्ययन न करे, लेकिन एक समर्थ ब्राह्मण कभी भी अपने बच्चे को शूद्र वर्ण में कैसे देख लेगा। उसके अहम को ठेस नहीं लगेगी? तब तक शूद्र वर्ण का बच्चा भले ही कितना भी वेदों का अध्ययन कर ले एक क्षत्रिय या ब्राह्मण अपने वर्चस्व से उसे आगे बढ़ने देगा ही नहीं। युग कोई भी रहा हो, लेकिन कभी भी वैयक्तिक अहम ने समाज के सामूहिक अहम में अपना विलय नहीं किया है। अपने वर्चस्व के प्रदर्शन के लिए व्यक्ति ने समाज के नियमों का मनचाहा शोषण किया है और आवश्यकता पड़ने पर उसका विखंडन भी किया है। फिर यह वर्ण-व्यवस्था मानवीय वर्चस्व से कैसे अपने को सुरक्षित रख सकती थी। इसकी परिणति जाति-व्यवस्था में हुई और यही उस वर्ण-व्यवस्था को स्वाभाविक सद्गति थी। डॉ. अम्बेडकर ही यह संभावना उपेक्षणीय नहीं है कि यदि वर्ण-व्यवस्था न होती तो जाति व्यवस्था के इतने सशक्त बंद वर्ग न होते।

क्या मनुवाद समाज के लिए वरदान है?

मनु की समाज के लिए क्या देन है, इसके मूल्यांकन पर ही इस प्रश्न का उत्तर आधारित है। यदि मनु न होता तो समाज किस उपलब्धि से वंचित रह जाता, जब तक यह स्पष्ट नहीं हो जाता तब तक इसका उत्तर निलम्बित ही रहेगा। पहले मनु की देन की ही समीक्षा कर ली जाए, लेकिन उन श्लोकों को इस समीक्षा से अलग रखना पड़ेगा, जिन्हें डॉ. सुरेंद्र कुमार ने अपने मापदंडों द्वारा प्रक्षिप्त घोषित किया है, क्योंकि यदि उन श्लोकों को भी समीक्षा प्रक्रिया में सम्मिलित कर लिया जाए तो मनु की समाज को देन शून्य हो जाएगी, जो एक असंभव घटना होगी, क्योंकि एक महान वैदिक ऋषि समाज को कुछ न कुछ अवश्य देता है, अतः उन विवादास्पद श्लोकों को प्रक्षिप्त मानते हुए मनु की देन पर समीक्षात्मक दृष्टि डालनी ही उचित

प्रतीत होती है।

1. मनु ने दंड-व्यवस्था की एक नवीन अवधारणा प्रस्तुत की। मनु ने कहा है कि अपराधियों को दंड देते समय अपराध की प्रकृति, अपराध का दुष्प्रभाव तथा अपराधकर्ता के पद व प्रतिष्ठा का ध्यान रखना चाहिए। एक ही अपराध पर विभिन्न वर्णों के व्यक्तियों पर समान दंड नहीं होना चाहिए। वे उच्च पद वाले को अधिक और निम्न पद वाले को अल्प दंड का विधान करते हैं। उनका तर्क है कि उच्च पद वाला व्यक्ति अपराध के गुण-दोषों को अधिक जानता है, अतः वह अधिक दंड का भागी होना चाहिए

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च॥

(8-337)

ब्राह्मणस्य चतुःषष्टि पूर्ण वाऽपि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः॥

(8-338)

अर्थात्जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलहगुणा, क्षत्रिय को बत्तीसगुणा और ब्रह्मण को चौंसठ गुणा या सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दंड होना चाहिए, अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उसको अपराध में उतना ही अधिक दंड होना चाहिए।

आश्रम–व्यवस्था

मनु ने मानव जीवन को सौ वर्ष का मानते हुए चार भागों में विभक्त किया हैब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासआश्रम। ये आश्रम मानव जीवन की मर्यादाएं हैं, जिनके अंतर्गत मानव अपने जीवन का सर्वांगपूर्ण विकास करके अंतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इस आश्रम व्यवस्था से मानव के एक दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप की संभावनाएं बहुत

कम हो जाती हैं। पच्चीस वर्ष तक विद्या-अध्ययन पूर्ण करके मानव अपने अनुकूल व्यवसाय का चुनाव करके गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करता है। पचास वर्ष की आयु तक गृहस्थ का सुख भोगकर घर का दायित्व अपनी संतान पर सौंप देता है। अब उसकी रुचि शास्त्रों के अध्ययन द्वारा ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति की ओर हो जाती है। वह देशाटन करता हुआ अध्यात्म में प्रवेश कर जाता है, लेकिन घर के संपर्क में बना रहता है। पचास से पिछत्तर वर्ष की यह अवधि वानप्रस्थाश्रम कहलाती है। पचहत्तर वर्ष के उपरांत वह अपने मन का इतना विस्तार कर लेता है कि संपूर्ण विश्व उसे अपना परिवार दिखाई देने लगता है। अतः इस अवधि में वह अपने परिवार के मोह बंधन से मुक्त हो जाता है और विश्व-कल्याण के चिंतन में स्वयं को समर्पित कर देता है। यह अवधि संन्यास-आश्रम कहलाती है। उसका यह सकारात्मक वैराग्य उसे मोक्ष के द्वार तक पहुंचा देता है। यही मानव-जीवन का अंतिम लक्ष्य है।

निश्चय ही यह आश्रम-व्यवस्था मानव मन से मृत्यु के भय को दूर कर देती है। अब वह मृत्यु को मोक्ष का द्वार समझने लगता है और अब वह उस में प्रवेश करते हुए क्यों भयभीत होगा जिसके उस पार अनंद सुख अर्थात् आनंद ही आनंद हो।

वर्ण-व्यवस्था का सकारात्मक पक्ष

यदि वर्ण-व्यवस्था जन्मना जाति-व्यवस्था में रूपान्तरित न होती तो यह वर्ण-व्यवस्था समाज के भौतिक विकास की धुरी बनती। समग्र समाज आर्थिक दृष्टि से संपन्न होता, क्योंकि सभी को उनकी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार कार्य मिल जाता। वर्ण-व्यवस्था में आरक्षण के लिए कोई स्थान नहीं था। वहां योग्यतम को ही ज्ञान-विज्ञान के कार्यों का आवंटन था, लेकिन आरक्षण में योग्यता को ज्ञान-विज्ञान के कार्यों से वंचित भी रहना पड़ सकता है और उसके स्थान पर उससे निम्न योग्यता के व्यक्ति को प्रतिष्ठापित किया जा सकता है, जो निश्चय ही समाज के विकास की गति को धीमा करने की एक राजनीतिक अनीति है। समकालीन भारतीय समाज इस अनीति

के जाल में जकड़ा हुआ है।

मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोकों के आधार पर तथाकथित शूद्र प्रेमी अपनी राजनैतिक विवशतावश मनु को शूद्र विरोधी सिद्ध करने के लिए राजनैतिक मंचों पर उत्पात मचाते हुए देखे जा सकते हैं, लेकिन मनु आरक्षण से नहीं, बल्कि उनके अंदर ज्ञान-विज्ञान के प्रति रुचि जाग्रत करके उन्हें शीर्ष वर्णों की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, वे स्पष्ट कहते हैं कि वह देश संम्पन्न नहीं बन सकता जिसमें शूद्रों की संख्या अधिक हो। वे चाहते हैं कि शूद्र शिक्षा प्राप्त करके उच्च वर्ण में सम्मिलित हो जाएं और शूद्र संख्या न्यूनतम रह जाए। मनु इस बात से अभिज्ञ थे कि यदि राष्ट्र में शूद्र संख्या अधिक हो जाए तो वह राष्ट्र ही नष्ट हो सकता है

यद् राष्ट्रम् शूद्रभूयिष्ठं नास्तिका क्रान्तम्।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम्॥

(मनु. 8-22)

कूट-आयुद्ध और माया-आयुद्ध की निंदा

प्राचीन काल में जिन्हें कूट-आयुद्ध और माया-आयुद्ध कहते थे आज के युग में उन्हें परमाणु-आयुद्ध और जैविक-आयुद्ध कह सकते हैं। जिन आयुद्धों की मारक-शक्ति से आज का मानव भयभीत है और उन पर प्रतिबंधों की बात कर रहा है मनु ने मनुस्मृति में उन पर प्रतिबंध लगाने की बात कही है। इस दृष्टि से मनु आज भी प्रासंगिक है

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून्।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः॥

(मनु. 7-90)

अर्थात्युद्ध में शत्रुओं को मारते हुए राजा धोखा युक्त शस्त्रास्त्रों से, कर्णी के आकार के बाणों से जो आगे से नुकीले और मध्य से चौड़े

होने के कारण शरीर में लगने के बाद निकलते नहीं, विष बुझे बाणों से और जिनका फलक अग्नि से तप रहा है अर्थात् तपते बाणों से भी न मारे। इसके साथ ही मनु ने (7-104) में माया युद्ध की भी निंदा की है? कूट-आयुद्ध और माया-आयुद्ध निश्चय ही महाविनाश का कारण बनते हैं अतः मनु ने युद्ध में इन आयुद्धों को प्रतिबंधित किया है।

कर निर्धारण की नीति

मनु के अनुसार सुखी राष्ट्र वही है, जहां कर साधारण है। यदि कर अधिक हो जाएगा तो प्रजा दुखी जा जाएगी और वह कभी भी क्रांति कर देगी। जो राजा शोषण से अपने राज्य को दुर्बल करता है वह बंधु सहित जीने से पूर्व ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है (7-11)। जैसे प्राणियों के प्राण शरीर को दुर्बल करने से क्षीण हो जाते हैं वैसे ही प्रजा को दुर्बल करने से राजाओं के प्राण नष्ट हो जाते हैं (7-112)।

जो राजा प्रजाओं की रक्षा किए बिना उनसे कर वसूलता है, चुंगी और जुर्माना ग्रहण करता है वह शीघ्र ही दुख को प्राप्त होता है (8-307)। प्रजा की रक्षा न करने वाले और 'कर' के रूप में छठा भाग ग्रहण करनेवाले राजा को सब प्रजाओं की संपूर्ण बुराइयों को ग्रहण करने वाला कहा है, अर्थात् सभी प्रजाएं ऐसे राजा की सभी प्रकार की बुराइयां करती हैं (8-308)।

मनु ने कहा है कि वणिजों पर कर समान नहीं लगेगा। कर निर्धारण

elibrary.rsnpgsamaj.org

करने में कर दाता की अर्जित संपत्ति को प्रभावित करने वाली सभी बातों का आकलन करना होगा

क्रय-विक्रयम् अध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमं च संवेक्ष्य वणिजो दापयेत् करान्॥

(7-127)

अर्थात्खरीद की दर बिक्री अथवा बेचने का भाव, माल पर मार्ग व्यय, माल लाने आदि के नौकरों पर व्यय, चोर आदि से रक्षा पर चौकीदार आदि का व्यय देखकर प्रत्येक व्यापारी पर 'कर' लगेगा।

मनु ने आगे कहा है कि करों को एकत्र करने वाले साधारण व्यक्ति न होकर आप्त-पुरुष होने चाहिए (7-80)। आप्त लोग सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य करने वाले होते हैं। राजा को स्वयं कर-निर्धारित नहीं करने चाहिए। कर का अनुपात वेदादि शास्त्रों में निश्चित है, अतः राजा को वही मान्य होना चाहिए।

वेतन-अनुपात

समय-समय पर सरकार सरकारी कार्मचारियों के वेतन निर्धारण के लिए आयोगों का गठन करती है, जो सभी वर्गों के लिए अलग-अलग वेतन निर्धारित करते हैं। उनके लिए मनु ने एक सूत्र दिया है। यह सूत्र न्यूनतम और अधिकतम वेतन का अनुपात निश्चित करता है

पणो देयोऽवकृष्टस्य षड्डुकृष्टस्य वेतनम्।
पाणमासिकस्तथाच्छादो धान्य द्रोणस्तु मासिकः॥

(7-126)

अर्थात्यदि छोटे भृत्यु को एक पण अथवा एक रुपया दिया जाता है तो छः पण बड़े का वेतन होगा। साधारण भृत्यों की अवस्था में वर्दी अर्थात् वस्त्र प्रति छः मास के पश्चात देने चाहिए और धान्य का द्रोण प्रतिमास देना चाहिए।

मनु का विचार है कि न्यूनतम और अधिकतम वेतन का अनुपात एक और छः का होना चाहिए। इससे अधिक वेतन का अंतर दुःख का कारण बनता है। हमारे देश में यह अंतर अधिक है, अतः कर्मचारियों में असंतोष व्याप्त है। यह असंतोष तभी समाप्त किया जा सकता है जब मनु